गढ़वाल
की
लोककथाएं

आकाश दानी दे पानी

आकाश दानी दे पानी

गढ़वाल की लघु लोक क़थाएं

गोविन्द चातक

१९७९

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९७९
मूल्य
रु० ५.००

मुद्रक
लखेरवाल प्रेस
नई दिल्ली

प्रकाशकीय

हमारे लोक-साहित्य में बहुत-सी मूल्यवान सामग्री जगह-जगह बिखरी पड़ी है। यदि उसका विधिवत संग्रह किया जाय तो निस्संदेह उससे हमारे साहित्य की बहुत ही वृद्धि होगी।

इस माला का श्रीगणेश हमने यही सोचकर किया कि हिन्दी के पाठकों को सुन्दर, सुरुचिपूर्ण तथा मनोरंजक लोककथाएं प्राप्त हों। पहले संग्रह में हमने बुन्देलखण्डी, ब्रज, छत्तीसगढ़ी, निमाड़ी, मालवी, अवधी, मगही, बाघेली, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी तथा गढ़वाली की बारह कहानियां मूल भाषा के साथ हिन्दी में दीं। दूसरे में ब्रज की लोक कथाएं, तीसरे में बुन्देलखन्डी की, चौथे में मालवी की, पाँचवें में मैथिली की, छठे में गढ़वाली की, फिर दो में राजस्थानी की, इस प्रकार इस माला में पाठकों को आठ पुस्तकें दी जा चुकी हैं। पाठक मूल भाषा का भी आनन्द ले सकें, इसलिए अधिकांश संग्रहों के अन्त में एक-एक कहानी मूल भाषा में दी गई है।

प्रस्तुत संग्रह में गढ़वाली की लोक-कथाएं संग्रहीत की गई हैं। अधिकांश कथाएं आकार में लघु होते हुए भी चुटीली, मार्मिक और भावात्मक हैं। प्रत्येक कथा किसी-न-किसी हेतु से अनुप्राणित है और लोक की अनुभूतियों को सरल रूप में व्यक्त करती है।

पुस्तक के अन्त में एक छोटी-सी कहानी मूल भाषा में हिन्दी अनुवाद सहित दे दी गई है।

संग्रह में कई तरह की कहानियां हैं। 'जसी' 'चन्द्रावती' और 'रैदास की भेंट' गीति-कथाएं हैं, क्योंकि वे गीत रूप में भी प्रचलित हैं, 'मेरी गंगा मेरे पास आयेगी' और 'जैसे को तैसा' आदि कथाएं कहावतों

देता है। देवी-देवताओं की वार्ताओं के समान अनिष्ट-कारिणी शक्तियों (भूत-आछरी) की मनौती के लिए नृत्य के साथ जो गीत गाये जाते हैं, उनमें कथा का अंश बहुत होता है और उनको 'रांसों' कहा जाता है। बहुत संभव है कि इस शब्द का सम्बन्ध रासो से हो। वैसे बोल-चाल में रांसो का अर्थ कथा ही होता है। कहानी का ध्येय मूलतः मनो-रंजन अथवा शिक्षण होता है।

कथा और वार्ता गद्य एवम् पद्य दोनों रूपों में मिलती हैं। कहानी प्रायः गद्य में ही होती हैं। कथाएं भी अधिकतर गद्य के माध्यम से ही व्यक्त होती हैं, किन्तु वार्ताएं चाहे गद्य में ही क्यों न हों, उनका गीत की भाँति गाया जाना आवश्यक है। गीत के रूप में जागर, पवाडे, चैती आदि के अनेक कथा-गीत अथवा गीति-कथाएं मिलती हैं।

गढ़वाल की लोक-कथाएं अपने विषय-विस्तार की दृष्टि से अनेक वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। तारादत्त गैरोला[1] ने उनका विभा-जन इस प्रकार किया है: (१) वीर गाथाएं, (२) परियों की कथाएं (३) पशु-पक्षियों की कथाएं, तथा (४) जादू-टोना की कथाएं। किन्तु वास्तव में गढ़वाल की कथाएं इन्हीं वर्गों में समाहित नहीं होतीं। हमारी दृष्टि में गढ़वाली लोक-कथाओं का निम्नलिखित विभाजन युक्ति-संगत है :

(१) देवी-देवताओं की कथाएं (२) परियों, भूतों, राक्षसों चमत्कारों की आश्चर्य तथा उत्साहपूर्ण कथाएं (३) वीर गाथाएं (४) प्रेम-कथाएं (५) पशु-पक्षियों की कथाएं (६) जन्मान्तर और पर-जन्म की कथाएं (७) कारण-निर्देशक कथाएं (८) लोको-क्ति-मूलक कथाएं (९) हास्य (मौर्ख्य) कथाएं (१०) रूपक अथवा प्रतीक कथाएं (११) नीति अथवा निष्कर्ष-गर्भित कथाएं (१२) बाल कथाएं।

---

१. हिमालय की लोक-कथाएं, भूमिका, पृष्ठ ५

देवी-देवताओं की कथाएं जो गेय रूप मिलती हैं, उन्हें 'जागर' कहा जाता है। जागरों में कथा कहने का भाव उतना प्रधान नहीं होता, जितना कि लीला गान। गढ़वाल में धार्मिक कथाओं अथवा वार्ताओं के दो रूप मिलते हैं। इनके गायक या पुरोहित लोग होते हैं या हरिजन-वादक, जिन्हें 'औजी' कहा जाता है। जागर कथाएं और वार्ताएं थोड़ा इस दृष्टि से भिन्न हैं कि जागर देवी-देवता की नृत्यमयी उपासना से संवद्ध हैं और वार्ताएं केवल देवी-देवताओं की जीवन-घटनाओं के ज्ञान से। देवी-देवताओं की कथाएं कुछ गद्य में भी मिलती हैं, किन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है।

परियों, भूत-प्रेत, भैरव, यक्ष, राक्षस-चमत्कार, भय, आश्चर्य और रोमांच की कथाएं गढ़वाल में बहुत हैं। लोक में यह विश्वास है कि अप्सराएं गुफाओं, पर्वत-श्रेणियों और रमणीक वनों में निवास करती हैं। वे पूर्व जन्म की अविवाहित किशोरी कन्याएं मानी जाती हैं, जो बाल्यकाल में ही मर जाती हैं और जिनकी जीने की लालसा बची रहती है: आछरियों (अप्सराओं) की रांसो कथा में कहा गया है कि उनमें रावण की कन्याएं भी हैं, जिन्हें उसने भगवान शंकर को अर्पित किया था। उन्हीं कथाओं में यह भी कहा गया है कि वे कृष्ण की गोपियां हैं। इन अप्सराओं के द्वारा सुमनोहर युवकों को हरे जाने के अनेक प्रसंग मिलते हैं। भूत, भैरव और राक्षसों से सम्बन्धित कथाओं में उनके उत्पीड़न की घटनाएं आई हैं। इनके द्वारा अनेक चमत्कार भी दिखाये गए हैं। जादू-टोना सम्बन्धी बातें भी इस कोटि की कथाओं में अधिक आई हैं। गुरु गोरखनाथ का उल्लेख अनेक कथाओं में चमत्कारों को लेकर ही किया गया है।

वीर-गाथाएं गद्य और पद्य दोनों रूपों में मिलती हैं। पद्य में उनका विकास पवाड़ों के रूप में हुआ है। उनमें भी गद्यात्मकता अधिक होती है। उन्हें प्रायः गाकर ही सुनाया जाता है। जगदेव पंवार, कालू भण्डारी, रणू रौत, रिखोला, गढ़ू, भानु, आशा हिंडवाण, कफू चौहान,

आदि की वीर गाथाएं इसी रूप में मिलती हैं। ये वीर-गाथाएं अब लुप्त होती जा रही हैं। इनके न अब वे गायक (हुड़क्या, चफून्या) ही रहे और न चारणों को आश्रय देने वाले सामन्त ही।

पशु-पक्षियों की कथाएं गढ़वाली हृदय की आत्मीयता को व्यक्त करती हैं। प्रकृति को सकुटुम्बी मानकर जीने वाले विश्वास उनमें प्रतिफलित हुए हैं। कुछ कथाएं हैं, जिनके सब पात्र पशु-पक्षी ही हैं, किन्तु अनेक कथाओं में वे मानव के सहयोगी के रूप में आयें हैं। इस प्रकार की कथाओं में चूहे, बिल्ली, तोता, शेर आदि के द्वारा बड़े-बड़े कार्य साधित हुए हैं। पशु-पक्षियों की शेष कथाएं परजन्म से सम्बन्धित हैं। उनमें पूर्व-जन्म में मानवीय आत्मा वा आवास माना गया है। घूगूती, म्योली, हिलांस, काफल पाक्कू आदि अनेक पक्षियों के सम्बन्ध में इस प्रकार की सुन्दर कथाएं उपलब्ध हैं। पक्षियों के अतिरिक्त फूलों के सम्बन्ध में भी परजन्म की कथाएं हैं। चन्द्र, सूर्य, इन्द्र-धनुष आदि में भी मानव और प्रकृति की एकसूत्रता व्यक्त की गई है।

इस प्रकार की कथाओं में कारण का निर्देश भी किया गया है। इसलिए ये कारण-निर्देश कथाओं के अन्तर्गत भी आ सकती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कथाएं पक्षियों की विशेष ध्वनियों का कारण बताने के ध्येय से रचित हैं। उदाहरण के लिए,घूगती मा सूती, तिल चुची पुतरी पूरे, काफल पाकू, सरग दादू पाणी दे, मैं क्या करूंलो, तीन तोली थ्याचड़क आदि ध्वनियों के रूप में कुछ पक्षियों की बोली मानी जाती है। इन ध्वनियों के विषय में आधारभूत कथाएं हैं, जो इस सत्य की व्याख्या करती हैं कि अमुक पक्षी अमुक बोली क्यों बोलता है। प्रायः कोई अपूरित लालसा अथवा उत्पीड़न इनके मूल में मानी जाती है। किन्तु कारण निर्देशन कथाओं का क्षेत्र और भी व्यापक है। आदिम मानव ने प्रकृति, जीव और जगत को अपने ढंग से समझने और व्याख्या करने का प्रयास किया है। इस प्रकार लोक-धारणाओं तथा विश्वासों के कारण-स्वरूप बनी घटनाएं अनेक कथाओं में आई हैं।

कुछ कथाएं नीति अथवा निष्कर्ष गर्भित होती हैं। उनको देखते हुए ऐसा लगता है जैसे किसी सत्य की पुष्टि के लिए उनकी रचना हुई हो। भाग्य की सार्थकता सिद्ध करने के लिए अनेक कथाएं हैं। 'भिखारी' एक बहुत ही सुन्दर कथा है। तकदीर को कहीं तदबीर से भी बड़ा सिद्ध किया गया है। कुछ कथाएं कुछ सीखों को सार्थक करती हैं। उसी प्रकार कर्ज हसकर लिया जाता है, रो कर दिया जाता है, फकीर ही फकीर को परख सकता है, 'भगवान छप्पर फाड़कर देता है', 'धन से बुद्धि बड़ी', 'जाको राखे साइयां मारि सकै नहिं कोय' आदि निष्कर्ष अनेक कथाओं में आते हैं। इस कोटि की कथाओं में विधि-निषेध तथा उपदेश परोक्ष-अपरोक्ष दोनों रूपों में निहित हैं।

गढ़वाली लोक कथाओं में लोकोक्ति मूलक लोक-कथाओं का महत्व-पूर्ण स्थान है। लोकोक्तियां अनुभवजन्य होती हैं और अनुभव प्रायः घटनामूलक हुआ करते हैं और यह भी उतना ही सत्य है कि घटनाएं कथा के मूल में बसती हैं। इस प्रकार कथा और लोकोक्ति का निकट का सम्बन्ध है। 'औरत के पेट में बात नहीं पचती', 'मेरी गंगा मेरे पास आयेगी', 'मैं तो और जगह भी चोरी कर लूंगा', पर इस घर की क्या दशा होगी', 'चूहे के बच्चे दीवान होने से रहे', 'तिल घटे न माशा बढ़े', 'नेकी के साथ नेकी' आदि इसी प्रकार की कथाएं हैं।

हास्य-कथाएं सभी जनपदों की भांति गढ़वाल में भी मिलती हैं। वस्तुतः उन्हें मौर्ख्य कथाएं कहना अधिक समीचीन जान पड़ता है। मूर्खों की भद्दी मूलें और करतूतें जहां हास्य को जन्म देती हैं, वहां अपनी चतुराई से दूसरे को उपहास का शिकार बनाने पर भी हास्य की सृष्टि कुछ कथाओं में की गई है। कुटनी की चाल की कथा में हास्य की यही रूपरेखा है।

गढ़वाल में बच्चों के बीच एक अन्य कोटि की कथाएं भी प्रचलित हैं, जिन्हें वे 'आंटा सांटा' कहते हैं। इस कोटि की कथाएं कथा-तत्व से

हीन होती है और मनोरंजन ही उनका सामान्य उद्देश्य हुआ करता है। ये कथाएं प्रायः कौतूहल-वर्धक होती हैं।

: २ :

लोक-कथाओं का अध्ययन तुलना की दृष्टि से बड़ा मनोरंजक है। गढ़वाल की लोक कथाएं इस दृष्टि से साम्य के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

वास्तव में लोक-कथाओं की आत्मा सर्वत्र एक-सी है। उनकी विषय-वस्तु, विचार-धारा तथा शैली में एकता मिलती है। कुछ अभिप्राय थोड़े से परिवर्तनों के साथ सभी जनपदों और सभी देशों की लोक-कथाओं में समान हैं। उदाहरण के लिए, किसी राजा का अपूता होना, संतान के लिए तप करना, किसी के द्वारा तब फल का दिया जाना, उस फल से गर्भ रहना, फिर ईर्ष्या-वश किसी दूसरी रानी द्वारा उस संतान को मारने का प्रयत्न या यह प्रसिद्ध कर देना कि रानी ने लड़के के बदले कुत्ता, पत्थर आदि पैदा किया, गढ़वाल की कथाओं में ही नहीं, विश्व की कथाओं में मिलता है। काश्मीर की दो राजकुमार, आसाम की नाटा राजकुमार, मालवा की काग उड़ावनी, नेपाल की कमलों के स्वर, पंजाब की सौ साल की नींद, निमाड़ी की सौतिया डाह आदि लोक-कथाएं अपने विषय और घटना में गढ़वाल की अनेक कथाओं से साम्य प्रकट करती है।[1] किसी घर में मनुष्य-योनि से मनुष्य के बदले नारंगी, कद्दू, बकरी आदि के पैदा होने और फिर उनके द्वारा महान कार्य किये जाने तथा मनुष्य बन जाने की कथाएं अन्यत्र ही नहीं, गढ़वाल में भी मिलती हैं। गढ़वाल की एक प्रसिद्ध लोक-कथा का नायक मेंड़ा है, जो स्त्री की योनि से पैदा हुआ था। उसी प्रकार एक दूसरी कथा में एक ब्राह्मणी सर्प को जन्म देती है। वह दिन को सर्प रूप में

---

१. लोक कथाओं के ये और दूसरे संदर्भ विभिन्न लोक-कथाओं की पुस्तकों से दिये गए हैं।

रात को मनुष्य रूप में रहता है। एक दिन उसकी पत्नी उसकी केंचुली जला देती है, जिससे वह रोज के लिए मनुष्य हो जाता है। इस आशय की लोक-कथाएं भारत के अन्य जनपदों में भी मिलती हैं। विमाताओं के अत्याचार की कथाएं भी सभी जनपदों में समान रूप से मिलती हैं। नेपाल की सुवर्ण केशी, राजस्थान की फूलवन्ती, अवध की मां की ममता, महाराष्ट्र की भाई-बहन तथा फ्रांस की सुन्दरी आदि लोक-कथाएं किसी-न-किसी रूप में बहुत अधिक साम्य के साथ एक ही बात को कहती हैं।

गढ़वाल में टोकण्या छोरा—कथा हास्य के लिए सुनाई जाती है। यह कथा भारत में बहुत व्यापक है। अवध में काना भाई, मालवी में दड़ा पटेल, पंजाब में भोला आदि रूपों में यही कथा कुछ हेर-फेर के साथ चलती है। मौर्ख्य कथाओं में सुन्दर सपना तथा फ्रांस की एक लोक-कथा से मिलती है। एक अन्य कथा गढ़वाल में सीख की लीक पर व्यंग्योक्ति के रूप में चलती है। यह कथा आसाम और अवध में भी प्राप्य है। छाया का भय शीर्षक इस संग्रह की कथा भी आसाम में उक्त कथा के साथ मिलती-जुलती है।

इस साम्य का कारण यह है कि आदिम मानव जहां भी रहा है, उसके जीवन का विकास एक-सा हुआ है और उसने जीवन और जगत को, मनुष्य की भावनाओं, सहज प्रवृत्तियों आदि को एक ही प्रणाली से समझा है। इसके अतिरिक्त दूसरा बड़ा कारण लोक-कथाओं का क्षेत्रीय प्रसारण भी रहा है। भारत के सभी जनपदों की कथाओं का गढ़वाल की लोक-कथाओं के साथ साम्य का एक अन्य कारण ऐतिहासिक भी है। गढ़वाल प्रारम्भ से ही भारत के विभिन्न जनपदों से सम्बद्ध रहा है। वहां अन्य क्षेत्रों से विभिन्न जातियां समय-समय पर आती रहीं। अत: लोक-कथाओं के भण्डार में उनकी देन भी सम्मिलित है।

मैं आशा करता हूं कि इस संग्रह की कथाएं पाठकों को मनोरंजक तो लगेंगी ही, उनका ज्ञानवर्द्धन भी करेंगी।

—गोविन्द चातक

अनुक्रम

आकाश दानी दे पानी

आकाश दानी दे पानी

किसी गांव में एक छोटा-सा परिवार रहता था। उसमें तीन जने थे—एक बुढ़िया, एक उसकी लड़की और एक उसकी बहू। सब मिल कर काम करते थे और खेती करके पेट पालते थे। बुढ़िया कमजोर हो चुकी थी। इसलिए खेती का सारा काम उसकी बेटी और बहू ही करती थी। वे दोनों छोटी थीं और करीब-करीब एक ही उम्र की थीं। बहू बहुत ही भोली और मेहनत से काम करने वाली थी। सास भली थी, पर बहू फिर भी डरकर रहती थी। बेटी का अभी ब्याह नहीं हुआ था। मां के दुलार में पल रही थी। सो स्वभाव में कुछ बेफिक्री थी, कुछ चुलबुलाहट और लापरवाही भी थी। पर वह निकम्मी न थी। काम करने में दोनों में होड़ रहती।

एक दिन उन्हें दांय[1] चलानी थी। उन्होंने पहले गेहूं की बालें खलिहान में बिखराईं, फिर बैलों की दो जोड़ियां खोलीं और उनके मुंह पर मुछीके बांधकर घुमाने लगीं। अनाज मांड़ने के लिए बहुत था। देखते-ही-देखते सूरज सिर पर चढ़ आया। जेठ की गरमी में बैल हांफने लगे और वे दोनों पसीने से लथपथ हो गईं। तब कहीं बुढ़िया बाहर निकली और उसने बैल खोलने को कहा। दोनों ने बैल खोले। बैल लम्बी जीभ निकालकर हांफने लगे। बुढ़िया ने कहा, "इन्हें प्यास लगी है। पानी पिला लाओ।" पानी जरा दूर था। भाभी और ननद कभी बातों में ही उलझ जाती थीं, इसलिए देर न हो, यह सोच बुढ़िया ने उन्हें लालच दिया—"मैंने आज बहुत अच्छा खाना बनाया है। जो अपनी बैलों की जोड़ी को पहले पानी पिलाकर लायगी, उसे मैं खीर खाने को दूंगी।"

"मैं खाऊंगी।" ननद उछली। भाभी जल उठी। उसने मरकने[2] बैल की तरह उसको देखा और फिर अपने बैल तेजी से दौड़ाये। ननद चिढ़ी उसने भी अपने बैलों को जोड़ी तेजी से हांकी। उन पर खूब लाठियां बरसाईं, पर भाभी के बैल तेज थे। दूर निकल गये। उन्हें पकड़ सकना उसे असम्भव दिखाई दिया। पानी का ताल गांव के परले पाखे पर था। ननद को गुस्सा आया, कुछ अपने ऊपर, कुछ बैलों पर और सबसे ज्यादा भाभी पर। खीर अब उसी को मिलेगी, वह सोचने लगी। सहसा उसने अपने बैल अधबाट[3] से ही लौटा दिये और प्यासे ही खूंटे पर बांध दिए।

मां ने बेटी को शाबाशी दी। बाद में बहू भी अपनें बैलों को लेकर आई। सास नें बेटी के सामने खीर का कटोरा रखा

---

१. गेहूं-जौ आदि की बालों से अलग करने की क्रिया।
२. मारने वाले ३. आधे-रास्ते से

बहू के लिए छंछैड़ा[1] परोसा। वह छंछैड़ा का कौर नीचे को निगलती, पर वह ऊपर को आता। उसे कभी खीर के कटोरे का विचार आता, कभी बैलों को पानी न पिलाने का। पर ननद की उसने शिकायत नहीं की।

ननद के बैल प्यास से तड़पने लगे। भाभी ने खाना खाने के बाद उससे कहा, "ननदी, खीर तो तुमने खा ही ली। अब चलो, बैलों को पानी पिला दें।"

भाभी और ननद गोशाला में पहुंचीं। वहाँ देखते क्या हैं कि एक बैल प्यासा मर रहा है। बैल तड़प रहा था। उसको आंखों में आंसू थे। कुछ ही देर में उसकी गर्दन बेजान होकर लुढ़क गई। मरते हुए उसने ननद को शाप दिया—"जा, तू चिड़िया हो जा और जिन्दगी भर मेरी ही तरह तड़पती रह।"

वह लड़की चिड़िया हो गई। तब से वह बैल की तरह प्यासी रहती है। जेठ की दुपहरी में "सरग दादू पाणी दे"—[2] कहती हुई वह आकाश से पानी मांगती रहती है। धरती का पानी वह नहीं पीती। उसमें उसको बैल का खून दिखाई देता है। O

---

१. खाने की एक चीज, जो छाछ में पकती है २. आकाश दानी दे पानी.
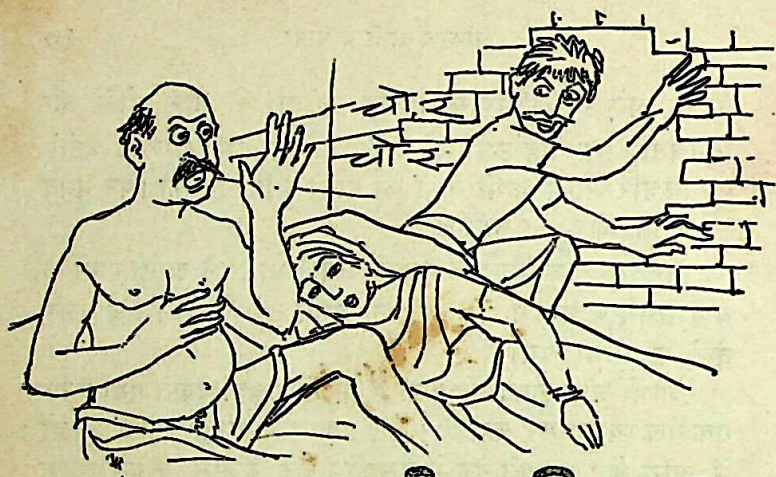
सीख की बात

किसी गाँव में एक गरीब आदमी रहता था। घर में वे केवल दो ही जने थे। पति आलसी और निकम्मा था। दिन भर पैर पसार कर लेटा रहता। स्त्री अक्सर बीमार रहा करती। बिस्तर से उठ नहीं पाती थी। स्वभाव से वह बड़ी बातूनी थी। इसलिए जब चंगी होती तो बातों में उसके दिन कटने लगते। खेतों में काम कौन करता! औरों के खेतों में भरीपूरी फसल होती। उनके खेतों में कुछ भी न उगता। इसी का यह नतीजा था कि गाँव में जहाँ और सब खाते-पीतें थे, वहाँ वही एक ऐसा घर था, जिसे अन्न का दाना भी नसीब न था।

एक दिन उस गांव में एक चोर आया। संयोग से चोर उन्हीं के घर में घुस गया। अबतक वह छोटी-बड़ी कई चोरियाँ कर चुका था। किसी घर में ज्यादा हाथ लगा था, किसी में कम। ऐसा कोई भी घर न था, जो बिलकुल खाली नजर आया हो। चोर अन्दर बड़ी आशा से आया था। घर में उसकी लडकी बीमार थी और उसे पैसे चाहिए थे। चोर का अनुमान था, कुछ-

न कुछ तो मिल ही जायगा। पर जैसे ही उसने अंधेरे कमरे में निगाह डाली, उसे कुछ दिखाई नहीं दिया। झरोखे से आती हुई चाँदनी की धुंधली रोशनी में उसने देखा, अनाज की कुछ खाली कंडियां एक कोने में लुढ़की हैं और घर का मालिक तथा मालकिन चूल्हे के पास फटे-पुराने चिथड़ों में सोये हैं।

चोर ने चारों ओर देखा, घूम-घूम कर देखा, पर जब कुछ भी उसके हाथ न लगा तो पहले तो उसे बड़ी निराशा हुई, फिर वह मन-ही-मन हंसा। उसने कहा, "ऐसा नंगा घर आज ही देखा है! घर गिरस्तीवाला संचय करता है। वह मधुमक्खी की तरह होता है। जो कुछ जुटा ही न सके, वह गृहस्थ कैसा?" इस सबमें वह भूल गया कि वह चोरी करने आया था। उसके मुंह से वही निकल गया, जो वह सोच रहा था। घर का मालिक जाग गया। चोर सटपटाया। घर का मालिक 'चोर-चोर' चिल्लाया। चोर चिढ़ा। बोला, "चुप क्यों नहीं रहता! तुझसे तो चोर भला! वह मेहनत तो करता है! अरे, मैं तो दूसरे घर जाकर भी चोरी कर लूंगा, पर इस घर की क्या हालत होगी!"

चोर चला गया। पत्नी सोई थी। पर पति फिर न सो सका। रात भर वह चोर की बात सोचता रहा और अपने निठल्लेपन पर अपने को धिक्कारता रहा।

सुबह हुई। उसने अपनी स्त्री को जगाया और उसे खेत पर चलने को कहा। उस दिन से वह खूब काम करने लगे। फिर हर बरस उनकी फसल अच्छी होती गई और उनके घर लक्ष्मी चली आई। अन्न से उनके कोठार भर गए और धन से भण्डार। उनकी गरीबी हमेशा के लिए मिट गई और वे सुख से रहने लगे। भगवान ने जैसी सदबुद्धि उस निठल्ले को दी, वैसी सबको दे। O

जसी

राजा हरिचन्द दानियों में दानी था। जैसा राजा था, वैसी ही उसकी रानी थी। वह भूखों को देखकर भोजन नहीं करती थी और नंगों को देखकर कपड़े नहीं पहनती थीं। राजा का घर था, किस बात की कमी थी! धन-धान्य, मान-सम्मान, ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं थीं। पर राजा के कोई संतान न थी। राजा ने दान-पुन्य किया, रानी ने व्रत रखे, पत्थर पूजे और केदार की यात्रा की। भगवान प्रसन्न हुए और उस घर में एक कन्या जनमी। वन्दनवार सजे, ढोल बजे। देवताओं के यश से वह कन्या उस घर में पैदा हुई थी। ब्राह्मण ने उसका नाम जसी (यशी) रखा।

जसी दिनों-दिन बढ़ने लगी। औरों के बच्चे जितने बरसों में बढ़ते हैं, वह दिनों में उतनी बढ़ने लगी। धीरे-धीरे वह जवान हुई। उसके अंगों में रूप उभरा। वह फ्यूंली की कली की तरह खिल उठी। चांदनी की तरह उसके रूप की आभा फैली। दूर-दूर तक उसकी चर्चा होने लगी। जगह-जगह से लोग उसे ब्याहने आने लगे।

वीरू भंडारी ने जसी का नाम सुना। वह प्रसिद्ध भड़ था। नाम का ही वीर था। बड़े बाप का बेटा। लम्बी भुजाएं थीं उसकी, चौड़ी छाती थी। बांका जवान था। शरीर का रूखा था, पर हृदय प्यार का भूखा था। पिता ने जसी का ब्याह

उससे कर दिया। विष्णु को लक्ष्मी मिली, महादेव को पार्वती, मानो आकाश ने चन्दा को पाया, फूल ने भौंरे को। ब्याह कर वह कोटलीगढ़ में आई। वह माछी-पानी-से एकप्राण हो गए। जसी ने अपने को वीरू में खो दिया और वीरू जसी के प्यार में सबकुछ पा गया। वे दो शरीर थे, पर उनके प्राण एक हो गए। शहद जैसे मक्खी को लिपटा लेता है, वैसे ही प्रेम ने उनके हृदयों को लपेट लिया। वह घर-बार भूल गए, संसार भूल गए। वीरू की मां ने यह सब देखा। पूत को पालकर बहू के अधिकार में दे देना किस मां को अच्छा लगता है! बहू का हँसना-खेलना उसको बुरा लगने लगा और वह उससे नाराज-सी रहने लगी। वह सोचती, इसीने मेरे बेटे पर जादू कर दिया है। पर बेटे के सामने वह क्या कहती! बस, दांत पीसकर रह जाती।

एक दिन वीरू को सपना हुआ। सपने में उसने अपने पिता को देखा। उसे पिंड देने की याद आई। अपने ऊपर घृणा-सी हुई। सोचा, स्त्री के प्रेम में मैं अपने बाप को भी भूल गया! वह जाने की बात सोच ही रहा था कि जसी पानी लेकर लौटी। उसने पति का उतरा हुआ चेहरा देखा, पर कुछ कहने की उसकी हिम्मत न हुई। तब वीरू ने अपने-आप कहा, "मैं गया जा रहा हूं, जसी! पिताजी का पिंडदान करना है।"

जसी रोने लगी, बोली, "मैं अकेली कैसे रहूंगी?"

वीरू ने उसे समझाया, "मैं दो-एक महीने में ही आ जाऊंगा। तेरे लिए मखमली अंगिया लाऊंगा और बहुत बढ़िया चदरिया।"

जसी ने वीरू के पैर पकड़ लिये। बोली, "तुम मेरे सिर के छत्र हो, स्वामी। मेरे गले की माला हो। मेरे सुहाग की

बिन्दिया हो। पानी जब नदी को, सावन जब धरती को, छोड़ देता है, तो उनकी शोभा कहां रह जाती है!"

वीरू ने उसके आंसू पोंछे और समझा-बुझा कर चल पड़ा। जसी दिन-रात रोती रही। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। उसका रूप धुंधला पड़ गया। वह फूल की तरह मुरझा गई।

सास उससे अब और भी चिढ़ने लगी। दोनों में रोज झगड़ा ठन जाता। सास कोई-न-कोई बहाना खोज लेती। फिर उसे चुन-चुन कर गालियां देती। इससे बहू दिन-दिन और भी सूखने लगी।

एक दिन सास ने उससे पानी भर लाने को कहा। बहुत देर में तो उसकी नींद खुली। फिर उसने लम्बी घाघरी पहनी। उसके ऊपर सुवापंखी चादर ओढ़ी। फिर सखियों को बुलाया। तब कुछ सखियों को आगे और कुछ को पीछे लेकर वह पानी भरने के लिए चली। और तो जल्दी-जल्दी चलती थीं, पर जसी के पैर धीरे-धीरे उठते थे।

साथ की पनिहारिनों ने अपनी गागरें भरीं और घर लौट आईं, पर जसी पनघट के पास पत्थर पर बैठकर हाथ-पैर धोती रही। नहाने-धोने के बाद चलते-चलते उसने पानी में अपनी छाया देखी और अपने रूप पर वह हंसने लगी। तभी उसे एक दूसरी छाया दिखाई दी। जसी विस्मय में पड़ गई, "यह सुन्दर-सी छाया तो मेरी है, पर यह दूसरी छाया किसकी है?" तभी उसने पीछे मुड़कर देखा तो उसका बहनोई पद्मूरावत खड़ा था। जसी ने उसका अभिवादन किया।

पद्मू ने मुस्कराते हुए अभिवादन स्वीकार किया। जसी ने मुंह फेरा। उसके गोरे गालों पर यौवन का रक्त चमक आया। पद्मू उसे देखता ही रह गया। जब बहुत देर तक

उसने आंख न हटाई तो जसी ने कहा, "छिः जीजाजी, तुम भी..."

पद्मू जैसे सोते से जागा। उसने जसी का हाथ पकड़कर नीचे बिठाया। उसकी वेणी फूलों से सजाई और बातों में खो गया। जसी को भी समय का ध्यान न रहा। वह बरसों बाद मिले थे। बातों में दिन पूरा हो गया। दिन डूबा। जसी को घर की याद आई। वह हड़बड़ाकर उठी और जीजा को नमस्कार करके चल दी। घर लौटी तो सास का पारा चढ़ा हुआ था। पद्मू रावत के मिलने की बात उसे मालूम हो चुकी थी। जसी जैसे ही आंगन के छोर पर आई, सास की निगाह उसकी फूलों से सजी वेणी पर पड़ी। उसके बदन में जैसे आग-सी लग गई। बोली, "सबेरे से पनघट पर क्या करती रही? क्या वहां तेरा बाप आया था?"

जसी ने कहा, "ऐसा न कहो, सासजी। दिन की रात न बनाओ। दूसरे सब लोग बाप की तरह होते हैं। पद्मू मेरा जीजा है। वह कहीं जा रहा था। पनघट पर मिल गया। मैं उससे दीदी की कुशल पूछने को रुक गई। मुझ पर कलंक न लगाओ। मैं विष खाकर मर जाऊंगी। गंगा में कूदकर प्राण दे दूंगी।"

पर सास कहां माननेवाली थी! उसने बहू से कहनी-अनकहनी कही, यहां तक कहा कि तू इधर-उधर की बातों से मेरे बेटे को भरमाती है। तेरे ढीठ दिल को बाघ खाये। तू जवानी पर दाग लगा कर आई है!

जसी कहती रही, "मैंने कोई पाप नहीं किया है।" पर सास के सामने उसकी एक न चली। आखिर वह हताश हो गई। पास ही उनका बाग था। जसी आंख बचाकर वहां गई और नीबू के पेड़ पर उसने फांसी लगा ली।

सास ने बहू को घर में न देखा तो घबराई। जसी की खोज हुई। कहीं न मिली। वीरू बाहर था, उसे बुरा सपना आया। वह जल्दी घर चला आया। आते ही कुछ शंकित हो गया। घर सूना लगता था। अपनी अट्टालिका पर बैठा तो कोई हँस कर बाहर मिलने न आया। वीरू ने जसी को पुकारा, "जसी, बाहर तो आ! मैं बाट का थका हूं, धूप का जला हूं। मुझे पानी तो पिला!"

वीरू देखता रहा, पर जसी न आई। थोड़ी देर में उसकी माता पद्मावती पानी लेकर आई। उसके मुंह पर हवाइयां उड़ रही थीं। वीरू ने पानी नहीं पिया। पूछा, "जसी कहां है?" मां की आंखों में रात छा गई। वीरू ने फिर पूछा, "मां, जसी कहां है?" मां ने कहा, "बेटा, उसका नाम न ले। उसका जीजा आया था। वह उसके साथ पनघट पर बातें करती रही।"

वीरू चकित रह गया। विधाता ने यह क्या किया? मेरी जोड़ी का हंस किसने अलग कर दिया! भगवान मैं जसी जैसी स्त्री कहां से पाऊंगा! तब वह उसकी खोज में निकला। खोजते-खोजते वह बाग में पहुंचा। वहां जसी पेड़ से लटकी थी। उसका मुख पीला पड़ गया था। रूप बिगड़ चुका था। पर मुखड़ा अभी हँस-सा रहा था। वीरू ने उसे हृदय से लगा लिया—"जसी, तू मुझे छोड़कर कहां चली गई? तेरी अल्हड़ जवानी किस देव ने हर ली? बता, क्या तूने सचमुच पाप किया है?" वीरू विलाप करने लगा और बेहोश हो गया।

बेहोशी में उसने महादेव-पार्वती को देखा। सहसा वह चौंक कर जागा। उसने हाथ में पानी की दो बूंदें लीं और जसी के मुख पर छींटे मारते हुए कहा, "अगर तेरा कोई दोष नहीं है, अगर तूने कोई पाप नहीं किया है, तो तू जाग जा। अगर

तू सचमुच दो की जाई[1] और एक की जोई[2] है, तो मैं तुझे पुकार रहा हूं, तू सोये हुए की तरह उठ जा !"

न जाने प्रभु की क्या माया हुई कि जसी उसी समय जी गई। जैसे जसी जी उठी, वैसे ही इस कथा को सुननेवालों की सभा भी जीती रहे। O

१. बेटी. २. स्त्री.

कौन किसका पति ?

एक राजा था। उसका एक मंत्री था। राजा का एक लड़का था। मंत्री के भी एक लड़का था। राजकुमार और मंत्री के लड़के में बड़ी दोस्ती थी। उन दोनों की जोड़ी थी। साथ खेलें और पले थे। दोनों को किसी बात की कमी न थी। वह फूल की तरह खिले थे। राजकुमार गोरा था। मंत्री का लड़का कुछ सांवला था। राजा उनको राम-लक्ष्मण की जोड़ी कहता था।

जब राजकुमार बड़ा हो गया तो राजा ने उससे कहा, "मैं तुम्हारा ब्याह कर देना चाहता हूं।" राजकुमार ने बात टालनी चाही, पर राजा के बहुत कहने पर उसने कहा, "अगर मेरे साथी का भी ब्याह कर दें तो मैं भी अपना ब्याह कर लूंगा।" राजा मान गया और दूसरे ही दिन उसने मंत्री को उनके ब्याह के लिए कह दिया। कहने की देर थी कि राजकुमार और मंत्री के लड़के का विवाह हो गया। दोनों को दो सुन्दर बहुएं मिली।

दोनों अपने पतियों को बहुत चाहती थीं और दोनों को उनके पति बहुत चाहते थे।

राजकुमार को शिकार का बहुत शौक था। मंत्री का लड़का भी साहसी था। वे दोनों साथ-साथ शिकार खेलने जाया करते थे। पर दुर्भाग्य से अभी तक कभी कोई शिकार उनके हाथ न लगा था। राजकुमार को इस बात का बड़ा दुःख रहता था। एक दिन राजकुमार मन्त्री के लड़के को साथ लेकर चल दिया। वह इस बार अवश्य शिकार मारना चाहता था। उसे कुछ विश्वास भी था। कुछ दूर पर एक वन था। वह दोनों उसमें गये। आगे चलकर एक मंदिर मिला। राजकुमार घोड़े से उतरा और मंदिर के आगे शीश नवाते हुए बोला, "हे शिव, मुझे शिकार देना। मेरे शस्त्र प्यासे न रहें। अगर मुझे शाम तक शिकार न मिला तो मैं तुम्हारे ही आगे अपना सिर काट डालूंगा।"

मंत्री का लड़का राजकुमार की बात पर मुस्कराया। फिर चिढ़ाकर बोला, "क्या बच्चों की-सी बातें करते हो, राजकुमार!"

राजकुमार ने कहा, "यह बच्चों की-सी बात नहीं है। सच कहता हूं। शिकार न मिला तो सिर काट डालूंगा। अच्छा, हम आज अलग-अलग दिशाओं में जायंगे और शाम को इसी मन्दिर के पास मिलेंगे।"

इसके बाद एक ओर को राजकुमार गया, दूसरी ओर को मन्त्री का लड़का। दोनों ही शिकार के लिए चिन्तित थे। राजकुमार को अपने प्रण का भी ध्यान था।

शाम होने को आई, पर राजकुमार को कोई शिकार न मिला। वह आत्म-ग्लानि से गलता जा रहा था। आखिर

निराश होकर उसने घोड़ा मन्दिर की ओर मोड़ा। वहां पहुंच कर देखा कि उसका साथी अभी तक वहां नहीं पहुंचा है। राजकुमार आवेश में तो था ही, वह फौरन घोड़े से उतरा। उसने अपना खड्ग निकाला और एकाएक उसने अपनी गर्दन उड़ादी। धड़ वहीं पड़ा रहा और सिर शिव के चरणों में जा गिरा।

थोड़ी देर बाद मन्त्री का बेटा भी वहां आ पहुंचा। उसके कन्धे पर एक हिरन था और वह कहता चला आ रहा था कि राजकुमार से कहूंगा कि बड़ी कठिनाई से यह पकड़ में आया है।...लेकिन मन्दिर के द्वार पर पहुंचते ही वह चकित रह गया। उसने देखा कि राजकुमार का सिर धड़ से अलग पड़ा है। मन्त्री का लड़का न रो सका, न बोल सका। वे दोनों दो शरीर, एक-प्राण थे। उनका मछली और पानी का-सा जीवन था। मन्त्री का लड़का सहसा बेहोश होकर गिर पड़ा। कुछ देर बाद उसे होश आया। उसने सोचा, आखिर इस तरह मरने में क्या चतुराई थी! तभी उसे खयाल आया, "वचन की बड़ी कीमत है।" उसने देखा, राजकुमार के मुख-मण्डल पर हँसी खेल रही है। मन्त्री का लड़का बोला, "तुम सच्चे निकले। पर क्या तुम्हें शिव ने नहीं बचाया?"

इतना कहकर शिव की मूर्ति के पास जाकर रोया, गिड़-गिड़ाया, "हे भगवान्, मेरे दोस्त को न जिलाओगे तो मैं उसी की तरह सिर काट कर मर जाऊंगा।"

उसके इस संकल्प पर शिव न पसीजे। तब मन्त्री के लड़के ने भी तलवार निकाली और अपना सिर काट डाला।

रात हुई। राजकुमार और मन्त्री का लड़का जब अपने घर न पहुंचे तो राज्य में हलचल मच गई। राजा ने उनकी खोज

में सिपाही भेजे। दूसरे दिन शिवजी के मन्दिर के द्वार पर उनके मृत शरीर मिले। उनकी पत्नियों को सूचना मिली तो वे रोती-बिलखती आईं। उनका सुहाग छिन चुका था। सारा वन उनके रुदन से भर उठा। हाहाकार मच गया।

महादेव सोए हुए थे। पार्वती उनके पांव दाब रही थीं। सहसा उनके कानों में रुदन के स्वर पड़े। "हमारे वन में कोई रो रहा है।" पार्वती ने इधर-उधर देखकर कहा। फिर उन्होंने शिवजी को जगाया। शिव उठे। बोले, "क्या बात है, पार्वती ?"

पार्वती ने राजकुमार और मन्त्री के लड़के की मृत्यु का समाचार सुनाया। शिवजी ने ध्यान न दिया। बोले, "तो क्या हुआ ? दुनिया में लोग मरते ही हैं।"

पार्वती ने कहा, "पर राजकुमार आपका भक्त था, देव ! और आप अनर्थ कर रहे हैं। अगर आपने कुछ नहीं किया तो आप पर से लोगों का विश्वास उठ जायगा।"

शिवजी मुस्कराये। बोले, "तुम भी भोली हो, पार्वती ! वे मूर्ख थे और मूर्खों के लिए मौत कभी भी महंगी नहीं पड़ती।"

पार्वती शिव की बात नहीं समझीं। उन्होंने लाल आंखों से उनकी ओर देखा और पीठ फेरकर बैठ गईं। शिव समझ गए कि वह नाराज़ हो गईं। बोले, "पार्वती, इसमें मेरा क्या दोष ? वह चाहता था कि शिकार मरे। उसके प्राण बचाने के लिए मैं किसी दूसरे प्राणी की मौत कैसे कर देता ? मेरे लिए तो सब प्राणी समान हैं।" पार्वती फिर भी न मानीं। बोलीं, "मुझे तो उन दो स्त्रियों पर दया आती है। देखो न कैसी बिलख रही हैं ! स्त्री के लिए उसका पति ही सर्वस्व होता है। जब स्त्री रोती है तो सागर दहल जाता है, पहाड़ हिल उठते हैं।"

शिवजी कुछ न बोले, पर पार्वती अपनी बात से टस-से-मस न हुईं। आखिर शिवजी को उनकी बात माननी ही पड़ी।

उस समय राजकुमार और मन्त्री के लड़के के शव श्मशान में पहुंचाये जाने वाले थे। पार्वती ने कहा, "जल्दी करो, स्वामी!" शिव मन-ही-मन कुढ़े, "यह तो रोज योंही परेशान किया करती हैं।" और वह कुछ झुंझलाये हुए और कुछ जल्दी में तो थे ही, उन्होंने मन्त्री के लड़के का सिर राजकुमार के धड़ से और राजकुमार का सिर मन्त्री के लड़के के धड़ से मिला दिया। उस समय उनकी पत्नियां आंख मूंदे शिव की आराधना कर रही थीं। जब उन्होंने आंखें खोलीं तो वे असमंजस में पड़ गईं। यह क्या हुआ? पर वे कहतीं तो किससे और क्या? शिवजी अन्तर्धान हो चुके थे। उनके मुख खुले-के-खुले रह गए। सारी खुशी पर पानी फिर गया। अब वह किसे अपना पति कहतीं! धड़ एक का था तो सिर दूसरे का। दोनों कुछ फैसला नहीं कर सकीं।

कोई बता सकेगा कि आखिर उन दोनों में से किसने किसको अपना पति माना होगा? O

कुटनी की चाल

एक राजा था। उसके नगर में एक बढ़ई रहता था। दोनों के एक एक लड़का था। उनमें बड़ी दोस्ती थी। एक के बिना दूसरा न रहता था। राजा का लड़का यह नहीं सोचता था कि वह राजा का लड़का है और उसका साथी बढ़ई का लड़का। बचपन में दोनों ऐसे खेलते थे मानो भाई-भाई हों। बड़े हुए तब भी उनमें कोई अन्तर नहीं आया। दोनों हर घड़ी साथ रहते थे। उनमें ऐसी मित्रता थी कि एक की बात दूसरे से छिपी न रहती थी।

एक दिन राजा को पता चला कि उसके लड़के की बढ़ई के लड़के के साथ गहरी दोस्ती है। राजा को बहुत बुरा लगा। कहां वह और कहाँ बढ़ई! राजा ने उसी समय अपने लड़के को बुलाया और कहा, "बेटा, मैंने सुना है कि तुम्हारी बढ़ई के लड़के के साथ दोस्ती है।" राजकुमार ने कहा, "जी हां पिताजी, वह मेरा बड़ा अच्छा दोस्त है। मैं उसके बिना

नहीं रह सकता और वह मेरे बिना नहीं रह सकता । वह अपनी सारी बातें मुझसे कह देता है । और मैं भी अपनी कोई बात उससे नहीं छिपाता ।"

राजा नाराज हुआ । बोला, "बेटा, तुम राजा के लड़के हो, वह बढ़ई का लड़का है । साथ तो सदा बराबर के लोगों का होता है । तुम आजसे उसका साथ छोड़ दो ।"

उस दिन से राजा ने उन दोनों का मिलना-जुलना बन्द कर दिया । पर वह कहां मानने वाले थे । छिप कर मिल लिया करते और उनकी शिकायत राजा तक पहुंच जाती । राजा को बड़ी चिन्ता हो गई । वह सोचने लगे कि किस तरह इन दोनों का साथ छुड़ाया जाय । उसी शहर में एक कुटनी रहती थी । वह जवान लड़की थी और दीखने में भली मालूम होती थी । उसने राजा की परेशानी की खबर सुनी । फौरन राजा के पास पहुंची । उसने कहा, "महाराज, मैं एक घड़ी में सब ठीक कर दूंगी ।"

राजा ने कहा, "अच्छा, काम होने पर मैं तुम्हें बहुत-सा इनाम दूंगा ।"

राजा का लड़का और बढ़ई का लड़का उस दिन शिकार खेलने गये थे । कुटनी ने सोलह श्रृंगार किए, अप्सरा-सी बनी और पालकी पर बैठकर उसी जंगल में चल दी । जैसे ही वह उनके पास पहुंची, उसने पालकी नीचे रखवाई और राजा तथा बढ़ई के लड़के की तरफ संकेत करने लगी । दोनों ने उसे देखा और कहने लगे , यह वनदेवी कहां से आई है । वह उसके रूप पर मोहित हो गये । एक सोचता कि मैं उसके पास जाऊं । दूसरा सोचता मैं उसके पास जाऊं पर वह दूर से ललचाती रही । अन्त में उसने बढ़ई के लड़के को संकेत किया । वह उसके पास गया । उसने कहा, "मैं तुझसे एक बात कहती हूं ।"

बढ़ई के लड़के ने कहा, "कह।"

कुटनी ने कहा, "नहीं तेरा साथी सुन लेगा।"

बढ़ई के लड़के ने कहा, "सुन लेगा तो क्या हुआ ! हम दोनों साथी हैं।"

कुटनी बोली, "कान में कहूंगी।" बढ़ई के लड़के ने उसकी ओर कान किया। उसने उससे चुपके से कहा, "किसी से न कहना।" और फिर उससे कहा, "जाओ" बढ़ई का लड़का चला आया। राजा के लड़के नें पूछा, "क्यों, उसने क्या कहा ?"

बढ़ई के लड़के ने जवाब दिया, "कहा उसने अपना सर ! कहा कि किसी से न कहना।"

राजा के लड़के ने समझा कि उसने उससे कोई बात कही जरूर है। उसको किसी और से न कहने के लिए उसने कहा है, और इसीलिए वह उस बात को मुझसे नहीं कह रहा है। राजा के लड़के को गुस्सा आ गया। बोला, "हम साथी हैं। हमने कभी कोई बात आपस नहीं छिपाई। क्या तुम उस बात को मुझसे नहीं कहोगे ?"

बढ़ई के लड़के ने कहा, "कहना क्या है ! कह तो दिया कि उसने कहा कि किसी से न कहना।"

राजा के लड़के ने फिर भी उसकी बात पर विश्वास न किया। उसने सोचा कि बढ़ई का लड़का उससे कोई बात छिपा रहा है। फिर क्या था ! उनमें झगड़ा शुरू हो गया। कुटनी दूर से देखती रही। जब झगड़ा बढ़ गया तो वह पालकी पर बैठी और चलने लगी, जाते हुए उसने बढ़ई के लड़के से फिर चिल्लाकर कहा, "खबरदार, तू जिम्मेदार है, किसी से कहना नहीं।"

उससे राजा के लड़के का और भी खून खौलने लगा।

फिर भी जब वह गांव में आता। तो उसके घर भी चला जाता। उसके लड़के से बात करके चला आता था। उठते हुए वहां भी वही कहता। बुढ़िया उसे अपने ऊपर ताना समझती। धीरे धीरे वह योगी से खार खा बैठी।

एक दिन बुढ़िया ने सोचा। इस जोगड़े के होश ठिकाने लगाने चाहिए। उसके लिए वह उपाय सोचने लगी। आखिर एक दिन उसने देखा कि योगी गाँव में आ रहा है। । उसने जहर डालकर रोटियां बनाईं और योगी के लिए रख दीं। रोज की भाँति योगी आया। उस दिन बुढ़िया का लड़का घर नहीं था। आटा पीसने की चक्की पर गया हुआ था। बुढ़िया ने योगी को रोटियाँ दी। योगी ने कहा, झोली में डाल दो, माई ! भूख लगने पर खा लूंगा।" रोटियाँ लेकर वह वहाँ से चल दिया।

वह अपनी गुफा पर आया और लेट गया। योगी की गुफा से होकर ही चक्की का रास्ता जाता था। नदियों पर जब छाया ढल गयी तो बुढ़िया का लड़का और बहू इधर से आटे का बोझ लिये लौटे। चढ़ाई का रास्ता था दोनों पसीने से लथ पथ थे। जोर की प्यास लगी थी। पानी पीने के लिए योगी की गुफा में गये। योगी से उन्होंने पानी मांगा। योगी ने पानी देते हुए कहा, "बड़ी देर की। कुछ खाया भी या नहीं ? बिना अन्न खाये पानी नहीं पीना चाहिए।" और उसे तभी बुढ़िया की दी हुई रोटियाँ याद आईं। उसने रोटियां निकालीं और उनके हाथ में पकड़ा दी, "लो, रोटियाँ खा लो। तुम्हारे घर से ही मिली थीं। मैं अपने लिए फिर और बना लूंगा।"

बुढ़िया का लड़का और बहू रोटी खाने लगे. पर उन्होंने कुछ कौर हो खाये थे कि अचानक उनकी आँखें घूमने लगीं। मुंह में लार आने लगी और सारा शरीर नीला पड़ गया। देखते-देखते वे लुढ़क गये। योगी ने यह देखा तो चिल्लाया, "यह क्या

हुआ ?" लोग आए। सबने कहा, "रोटियों में जहर मालूम होता है।" वे योगी को मारने को उठे। योगी ने समझाया, "रोटियाँ मुझे बुढ़िया ने दी थीं।" लोगों नें बुढ़िया से पूछा। बुढ़िया ने कहा, "रोटियों में विष मैंने योगी को मारने के लिए मिलाया था" फिर क्या था, लोगों ने उसको खूब धिक्कारा बुढ़िया फूट फूट कर रोने लगी। लोगों ने कहा, "जो दूसरों का बुरा चाहता है, भगवान उसी का बुरा करता है।"

उसी दिन सबने माना, योगी ठीक कहता है, "नेकी के साथ नेकी, बदी के साथ बदी। जो ऐसा नहीं तो और कुछ करके देख।"
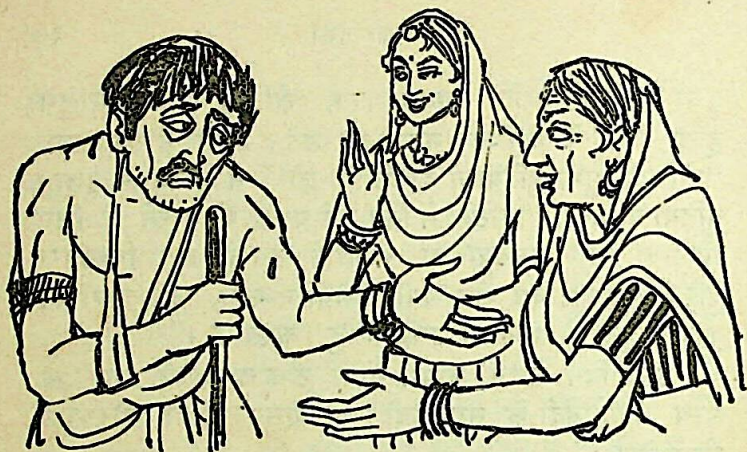
सीख की लीक

किसी गाँव में एक मूर्ख रहता था। उसे अपनी अक्ल न थी। जैसे कह दिया, वैसा कर देता। अपनी समझ से कुछ नहीं करता था। बचपन में लोग उसको इसी लिए अच्छा भी मानते थे। जवान हुआ तो लड़के उसका मजाक उड़ाने लगे। उसका विवाह नहीं हुआ। आखिर उसे लड़की देता भी कौन ? मां को इससे बुरा लगा। मां को तो अपना बेटा कैसा भी हो प्यारा होता है। कंजूस को खोटा पैसा बुरा नहीं लगता। आखिर मां ने सोचा, भले ही बेटा मूर्ख हो, पर इसका ब्याह हो जाना चाहिए। और एक दिन उसका ब्याह हो गया। दुर्भाग्य से उन दोनों की ज्यादा नहीं निभ सकी। मूर्ख उससे अजीबबातें करता था। जहां-जहां वह जाती, वहीं-वहीं पीछे-पीछे चला जाता था। नई बहू शर्म से पानी-पानी हो जाती थी। लड़कों ने उसे इतना चिढ़ाया कि वह एक दिन भागकर मायके चली गई।

मूर्ख अब बहुत दुखी रहने लगा। मां को उससे भी अधिक

दुख था। उसने कई संदेश भेजे, पर बहू नहीं आई। आखिर एक दिन माँ ने बेटे से कहा, "बेटे किसी दिन तू ही अपनी ससुराल क्यों नहीं चला जाता!" बेटा राजी हो गया। मां ने उसे अच्छी तरह समझाया-बुझाया और रवाना कर दिया। रास्ते में उसे जो पहला आदमी मिला, वह सीटी बजाता हुआ आ रहा था। मूर्ख ने सोचा, रास्ता चलने का सबसे अच्छा ढंग यही है। वह भी अब सीटी बजाते हुए चलने लगा। आगे एक शिक़ारी चिड़िया पकड़ने के लिए झाड़ी में जाल लगाये बैठा था। जैसे ही चिड़िया जाल में पड़ने वाली थी कि मूर्ख सीटी बजाते हुए उधर से आ पहुंचा। चिड़िया सीटी की आवाज सुनकर उड़ गई। शिकारी देखता रह गया। उसने लाल-लाल आंखों से उसको घूरा और गुस्से में उसके एक ऐसी चपत रसीद की कि उसका मुंह टेढ़ा हो गया। मूर्ख अवाक रह गया। उसकी समझ में कुछ न आया। पहले वह दूसरी चपत पड़ने के डर से चुप रहा, पर जब शिकारी ने उसे वहां से जाने को कहा तो उसे गुस्सा आ गया। उसने कहा, "मैं अपने रास्ते चल रहा हूं। तुम्हारा क्या बिगाड़ रहा हूं!" शिकारी ने उसे समझाया, "रास्ते चलते कहीं सीटी बजाई जाती है? उससे साँप निकलते है।" मूर्ख बोला, "तो क्या करूं?" शिकारी ने कहा, "तुम्हें तो इन पक्षियों से कहना चाहिए, "आते रहो, मरते रहो।" मूर्ख को अब लगा, जैसे उसीसे कोई गलती की हो। उसने शिकारी से कहा, "माफ करना भाई, अब यही कहूंगा।"

शिकारी से विदा लेकर वह आगे बढ़ा। आगे जाकर उसे लोग मुर्दे को ले जाते हुए मिले। मूर्ख शिकारी की सिखाई हुई बात कहते हुए चला जा रहा था, "आते रहो, मरते रहो।" लोगों ने जब मूर्ख की बात सुनी तो उन्हें बहुत बुरा लगा। उन्होंने उसकी खूब पिटाई की। मूर्ख चकराया। बोला,

"भाई, इसमें मेरा क्या दोष है ? खैर जैसा तुम कहोगे, वैसा ही कहूंगा।" लोगों ने कहा, "देखता नहीं हम, मुर्दे को ले जा रहे हैं। तुझे तो राम-राम कहते हुए कहना चाहिए था कि ऐसा किसी के लिए न हो।" मूर्ख ने रोनी-सी सूरत बनाई और बोला, "माफ करो भाई, अब वैसा कभी न कहूंगा।"

मूर्ख ने अब नई बात पकड़ी और आगे बढ़ा। आगे उसके भाग्य से एक बरात आती मिली—ढोल बज रहे थे। सबके चेहरे खुश थे। मूर्ख जब उसके पास से गुजरा तो उन्होंने उसे कहते सुन लिया, "ऐसा किसी के लिए न हो।" बराती बहुत बिगड़े। उन्होंने उसको पकड़ा और अच्छी तरह उसकी मरम्मत की।

शाम को लंगड़ाता हुआ वह ससुराल पहुंचा। उसके शरीर पर नील के कई निशान पड़ चुके थे और उसकी हड्डियों के जोड़ दुखने लगे थे। सास ने पूछा, "जमाई, अच्छे हो।" मूर्ख सोचने लगा कि सास क्या कहे! मां ने उसे सिखा कर भेजा था कि अपनी सास से ऐसी-ऐसी बात कहना, पर वह डरता था कि कहीं रास्ते की तरह यहां भी पिटाई न हो जाय। वह इसलिए चुप बैठा रहा। सास ने फिर कहा, बोलते क्यों नहीं, जमाई।" मूर्ख ने कहा, "तुम मुझे मारोगी तो नहीं।" सास ने कहा, "ऐसा क्यों पूछते हो ?" तब उसने अपने घाव दिखाये। रास्ते की सारी बात सुनाई। उसकी छोटी साली बहुत हंसी। बोली, "ऐसा ही होता है जीजाजी ! सीख की लीक पकड़ना ठीक नहीं।"

ठीक भी है। थैली का संबल और सिखाई अक्ल आखिर कब तक साथ दे सकती है।

चूहे के बेटे का ब्याह
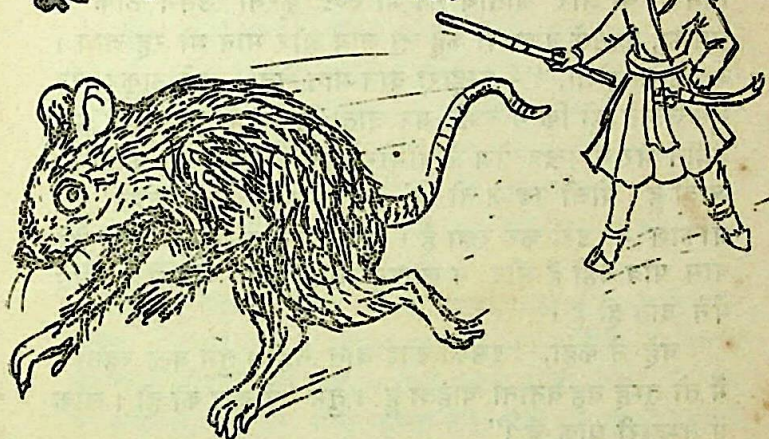
एक चूहा था । उसके एक बेटा था । जब वह छोटा था तभी से चूहे को उसके ब्याह की चिन्ता पड़ गई । उसकी बिरादरी के बहुत-से चूहे उसको बेटी देने को राजी थे । पर वह मामूली रिश्ता नहीं चाहता था । उसमें बड़प्पन था । वह अपने को उनसे बड़ा समझता था और उनसे ऊपर उठना चाहता था । इसलिए वह किसी अच्छी जगह की खोज में था ।

रोज वह यही सोचता रहता कि उसके बेटे के लिए अच्छी बहू कहाँ मिलेगी । चुहिया उससे कहती, "मेरे बेटे के लिए चांद-सी बहू लाना ।" एक दिन उसके कहने से ही चूहे को विचार आया कि चांद के पास ही क्यों न चला जाय । वह उसके पास पहुंच गया । चांद ने उसको बिठाया, आवभगत की और आने का कारण पूछा । चूहे ने कहा, "चन्दा, दुनिया में तुमसे ज्यादा खूबसूरत कोई नहीं । मैं अपने लड़के का ब्याह

तुमसे ...वाने आया हूं चांदरानी[1] मुस्कराई। स्वभाव से विनम्र थी और अतिथि को भी रुष्ट करना उसने ठीक न समझा, जिससे बात भी कह ली जाय और मान भी रह जाय। वह उससे बोली, "मैं तुम्हारी बात मान लेती, चूहे ठाकुर, पर तुम जानते हो कि मैं कभी मर जाती हूं, कभी जी उठती हूं। महीने भर में पन्द्रह रोज मैं बीमार रहती हूं, सूख कर कांटा हो जाती हूं, पीली पड़ जाती हूं; दिन-रात चलती रहती हूं। आकाश में डेरा कर रखा है। धरती पर चलने के लिए मेरे पास पांव नहीं हैं और न कुतरने और बिल बनाने के लिए पैने दांत ही हैं।

चहे ने कहा, "इसकी कोई बात नहीं। तुम बैठी रहना। मैं तो तुम्हें बहू बनाना चाहता हूं। तुम बड़े कुल की हो। लोक में तुम्हारी धाक है।"

चांद रानी बोली "मैं तो कुछ भी नहीं, मुझसे भी बड़ी मेरी बहन बदली है। वह मुझ-सी गोरी तो नहीं पर आकाश और पृथ्वी दोनों पर उसका राज है। देखो न, कभी वह मुझे भी ढंक देती है। तुम उसके पास क्यों नहीं चले जाते!

चूहा निराश होकर उठा ओर बदली के पास चला गया। वहां जाकर उसने कहा, "मुझे तुम्हारी बहन चांद ने भेजा है। मैं तुम्हें अपनी बहू बनाना चाहता हूं।" बदली गुस्से से भर आई, बिजली कौंधी। पर फिर उसने सोचा, कहीं चांद ने मजाक तो नहीं किया! उसका गुस्सा कुछ थमा और बोली, "रिस्ता तो बुरा नहीं, पर ऐसे मेरे भाग कहां कि आपके बेटे की बहू बनूं!" चूहा खुशी से फूल गया, कहने लगा, "क्या बात कहती हो बदली रानी, तुमसे बड़ा कौन है?" बदली बोली,

१ गढ़वाली में चांद का पयार्यवाची शब्द 'जून' स्त्रीलिंग है।

"मैं तो कुछ भी नहीं। मुझसे बड़ी नदी है। वह मेरा सारा पानी ले लेती है। तुम उसके पास जाओ।"

चूहा नदी के पास गया। उससे अपनी बात कही। नदी ने लाचारी प्रकट की, "मेरी ता जन्म से ही सागर से शादी हो चुकी है और मुझे ब्याह कर कोई करता भी क्या, ? मैं पानी-पानी हूं। जहां जाती हूं, धरती को अपने साथ बहा ले जाती हूं। लोग मुझको गन्दा करते हैं। मैं उनका कुछ नहीं कर सकती। तुम राजा के पास क्यों नहीं चले जाते ! वह अपनी लड़की तुम्हारे लड़के से ब्याह देगा।"

चूहे ने गर्दन हिलाई। उसने सोचा,राजा की लड़की से ही लड़के को ब्याहना ठीक रहेगा। तबसब उससे डरेंगे। बिल्लियों को फांसी पर चढ़वा देगा। फिर उसने सोचा, 'राजा तो नाम का होता है, राज तो मंत्री करता है। मंत्री की लड़की ब्याहनें से लाभ है राज काज में भी हाथ रहेगा और राजा से भी जान पहिचान हो जायगी मंत्री के मर जाने के बाद मैं अपनें बेटे को मंत्री बना दूंगा।' अब उसने मंत्री के पास जाना ही ठीक समझा। रास्ते भर कई बातें सोचता हुआ वह उसके द्वार पर पहुंचा और मिलते ही बोला, "मंत्रीजी, मैं अपने बेटे को तुम्हारी बेटी से ब्याहने आया हूं। ब्याह के बाद मेरा बेटा ही तुम्हें मंत्री बनाना होगा।"

"क्या कहा ?" मंत्री चिल्लाया। वह गुस्से से लाल-पीला होकर बड़बड़ाने लगा, "बड़ा आया मेरी लड़की से ब्याह करने वाला। मंत्री बनने वाला ! और कहां गये, जो चहे का बेटा मंत्री होगा ?"

चूहे को मारने के लिए गुस्से में उसने डंडा उठाया। चूहा घबराया और भाग निकला। भागते-भागते घर पहुंचा। चुहिया उसकी बाट देख रही थी। चहे को हांफते देखकर उसने पूछा,

कैसे रास्ता भूले विधाता ?" ब्रह्मा चिढ़ा, बोला, "गंगा के पास जा रहा हूं ।" रैदास ने कहा, "गंगामैया के पास तो मुझे भी जाना था। पर इस समय मैं काम पर लगा हूं ।" ब्रह्मा रुष्ट हुआ, तुम चमार हो । गंगामाई तुम्हें क्यों मिलेगी ?" रैदास, धीरे-से मुस्कराया, "अच्छा तो यह मेरी भेंट तो लेते जाओगे ? गंगामाई को दे देना ।" ब्रह्मा और चिढ़ कर बोला, "कैसा ढीठ है ? चमार की भेंट कहीं गंगा माई लेने लगी !" रैदास ने चमड़े का एक पैसा काटा और ब्रह्मा को दे दिया। ब्रह्मा सकुचाया इस पैसे को कैसे ले जाऊं ? चमार के हाथ का पैसा छूने को उसका जी न कर रहा था। आखिर बात टालने के लिए उसने कहा, "गंगामाई नाराज हो जायेगी ।" रैदास ने कहा, "नहीं, गंगामाई मेरी भेंट को लेने के लिए हाथ पसारेगी, जवान खोलेगी ।"

अब ब्रह्मा क्या करता ? उसने पैसे को जेब में रखा और रैदास को कोसता हुआ आगे चल पड़ा ।

ब्रह्मा ने आगे जाकर पैसे को धोया, स्वयं नहाया और देर तक शुद्धिमंत्र पढ़ता रहा । फिर उसने गंगामाई को पुकारा, पर कोई जवाब न मिला । ब्रह्मा ने सोचा, रैदास की भेंट के कारण मैं शायद अपवित्र हो गया हूं । गंगामाई शायद इसी-लिए छिप गई है । वह निराश हो गया । आखिर उसे लौटने की सूझी । पर सहसा उसकी आंखों की रोशनी गायब हो गई । जब वह गंगा माई की ओर देखता उसकी आंखें काम करतीं, पर जब वह लौटने लगता तो उसके आगे अंधकार हो जाता । ब्रह्मा वहीं पर बैठ गया । तभी उसने गंगा की आवाज सुनी, "रैदास की भेंट कहां है ?" ब्रह्मा गंगा के पास लौटा । रैदास का नाम लिया । गंगा ने तुरंत आवाज दी । ब्रह्मा ने पैसा

निकाला। गंगा ने हाथ बढ़ाया, फिर अपने हाथ का कंगन निकाला और कहा, "मेरी यह भेंट रैदास को दे देना।"

ब्रह्मा ने कंगन पकड़ा और अपने पास रख लिया। अपनी बात वह कर ही न सका। गंगामाई अन्तर्धान हो गई। ब्रह्मा ने गंगामाई को पुकारा, पर उसने आवाज ही न दी। ब्रह्मा लौट आया। रास्ते भर वह रैदास की भेंट के बारे में सोचता रहा—उस चमार की भेंट के लिए तो हाथ बढ़ाया और मुझसे बात भी न की। उसे अपना सोने का कंगन भी दिया।

कंगन बहुत सुन्दर था। उसे देखकर ब्रह्मा के मन में लोभ आ गया, कपट छा गया। मन-ही-मन कहने लगा, 'यह कंगन तो मेरी बेटी के लायक था। रैदास की चमारिन इसका क्या करेगी ?' आखिर ब्रह्मा ने ठान लिया कि कंगन रैदास को नहीं दूंगा ? रास्ते में रैदास का घर पड़ता था। ब्रह्मा उस रास्ते से नहीं लौटा। पर हुआ क्या कि जिस रास्ते से भी ब्रह्मा जाता, उसी पर उसको रैदास दिखाई देता और वह यही कहता सुनाई देता, "ब्रह्मा गंगामाई ने मुझे भेंट दी है। वह कहां है ?"

ब्रह्मा ने तब कंगन उसकी ओर फेंक दिया और बिना कुछ कहे चलने लगा। रैदास चिल्लाया, "सुनो ब्रह्मा, गंगा-माई ने कुछ कहा तो नहीं ?" ब्रह्मा चिढ़ा। छोटे मुंह बड़ी बात करता है। गंगामाई क्या इसको कहती कि तेरे घर आऊंगी। व्यंग्य में उसने रैदास से कहा, "गंगामाई ने कहा है कि तेरे घर आऊंगी।" "घर आने को कहा है !" रैदास खुश हुआ। ब्रह्मा हँसा, छोटी जात कितनी हलकी होती है। वह चाहता है, उसके साथ गंगामाई भी अपवित्र हो जाय !

ब्रह्मा घर चला गया। रैदास ने पत्नी से कहा, "मेरे घर

गंगामाई आयगी।" पत्नी ने गोबर से घर लीप-पोत कर गोमूत्र छिड़का और दीप जलाया।

शाम हुई। किसी को क्या खबर थी। सचमुच गंगामाई रैदास के घर आई। उसने गंगामाई का स्वागत किया।

ब्रह्मा अचरज में पड़ गया। देवता-गण देखते रह गए।

मेरी गंगा मेरे पास आवेगी
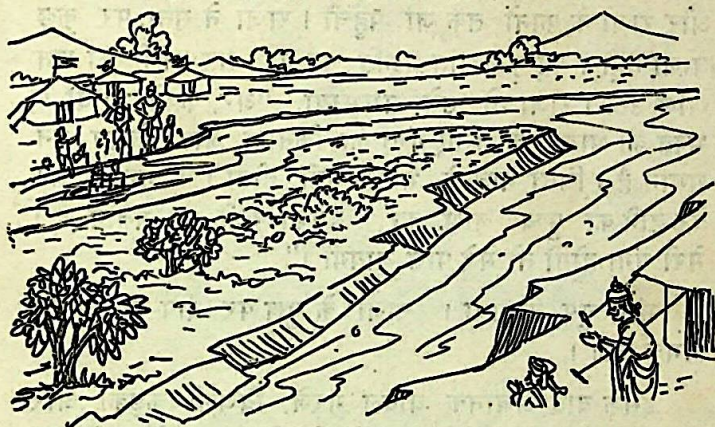
यशस्वी मर गये, बोल रह गए।

बात बहुत पुरानी है। किस पर्व का दिन था, यह याद नहीं। मकर या विषुवत संक्रान्ति थी या शायद वसंत पंचमी रही होगी। चांदी घाट पर लोग पुण्य-स्नान के लिए आये थे। ऐसे-वैसों की तो क्या गिनती, कई दिन पहले से ही देश-देश के राजा लोग भी वहां आ चुके थे। अच्छी-से-अच्छी जगह पाने की होड़ थी। गंगा के किनारे की जितनी जगह थी, उस पर कई राजा डेरे लगा चुके थे। गढ़वाल का धर्म-प्राण राजा देर से पहुंचा। उसे गंगा के किनारे पर अपने लिए कहीं जगह ही न दिखाई दी। आखिर लाचारी से उसे अपना डेरा दूर एक वन में लगाना पड़ा।

बात मामूली थी, पर दूसरे राजाओं ने मजाक में कहा, "जंगली राजा जो ठहरा!" यह बात चारों ओर फैल गई

और राजा के कानों तक जा पहुंची। राजा ने सुना, पर कुछ बोला नहीं। वह कुछ शांत प्रकृति का था। पर मंत्री का खून खौल उठा। राजा ने उसे समझाया, "अरे, कहने भी दो! भक्त की भावना के लिए गंगा का किनारा और निर्जन वन समान है। बिना भाव के भक्ति नहीं होती। वे गंगा के तट पर होने का पुण्य लाभ करें, हमको यहीं पर संतोष है। मेरी गंगा होगी तो मेरे पास आयगी।"

मंत्री चुप हो गया। राजा के मुख पर दीप-सी ज्योति चमक उठी।

इसके बाद अचानक बादल गरजे, बिजली कड़की और शाम का अंधकार काले बादलों से मिलकर और भी घना हो उठा। रात भर मूसलाधार पानी बरसा। गंगा में बाढ़ आई। कई राजाओं को गंगा के किनारे से अपने तम्बू हटाने पड़े और सबसे आश्चर्य की बात जो हुई, वह लोगों ने सुबह उठकर देखी। गंगा की एक धारा अलग होकर राजा के डेरे के पास बहने लगी।

सब लोग दंग रह गए। सबके मुंह पर एक ही चर्चा थी।

राजा ने कहा, "देखा, मैंने कहा था न कि मेरी गंगा होगी तो मेरे पास आयगी, और वैसा ही हो गया। श्रद्धा और विश्वास से क्या नहीं हो सकता!"

स्त्री के पेट में बात नहीं पचती

किसी गांव में दो जने रहते थे—एक स्त्री और एक पुरुष। पुरुष बड़ा चालाक था। स्त्री बड़ी बातूनी थी। उसे बात करने का बड़ा शौक था। जहां कोई आदमी मिलता, उसे बातों में लगा लेती और इस तरह बात-पर-बात यों निकल पड़ती कि वह अपने को भूल जाती। बात और छाछ को जितना चाहो, उतना बढ़ाओ। पर उसका पति उसकी इस बात से परेशान रहता था। वह दिन भर का थका घर आता। स्त्री उसे चैन न लेने देती। कभी एक बात पूछती, कभी दूसरी। दिन भर के कामों का हवाला लेती। कई बातें वह उसे बताना भी न चाहता था, पर वह उसके मुंह से निकाल कर ही सांस लेती। फिर जैसे ही सुबह होती, वह पनघट पर जाकर गांव की सब स्त्रियों से कह देती, "मेरे पति ने यह काम किया और वह चीज लाया।" गांव में उसकी खूब चर्चा होती थी। पति ने एक दिन गांव में ऐसा ही हल्ला सुना और उसने पत्नी को डांट दिया, "घर की बात औरों से नहीं कहनी चाहिए।" पत्नी ने कहा, "मैंने किसी से कुछ कहा ही नहीं। वे अपने-आप बातें बना रही होंगी। सिर्फ उस दीदी से कहा था

और उससे भी कह दिया था कि किसी से मत कहना।" उस दिन उसके पति ने उससे कसम ली कि घर की बात किसी के आगे न कहना।

कुछ दिन तक वह चुप रही। पनघट पर जाती, पानी भरती और सीधी चली आती। कोई मिलता तो मुस्कराती और आगे बढ़ जाती, लेकिन बाद में तबीयत न मानती। स्वभाव जल्दी से नहीं बदलता। आखिर उससे न रहा गया और वह पहले की तरह हो गई। पति ने भी उसे समझाना छोड़ दिया। उसने मन-ही-मन कहा, इसकी अब कोई दवा नहीं। जो शुरू में नहीं संभला, वह बाद में क्या संभलेगा ? उसने निश्चय किया कि मैं ही बदलूंगा। इससे एक बात सच नहीं कहूंगा।

एक दिन पति ने सोचा कि जरा इसकी अक्ल तो परखूं, देखूं, क्या करती है! उसको एक मजाक सूझा। जैसे ही शाम हुई कि वह एक संदूक लेकर आया। पत्नी ने पूछा, "यह क्या लाये हो ?" पति चुप रहा। पत्नी ने फिर पूछा, "इसमें क्या है ?" पति ने कहा, "क्यों पूछती हो! बताने लायक बात नहीं है।" और उसने उसी समय उस पर ताला लगा दिया। पत्नी को और भी शक हो गया। वह पीछे पड़ गई। आखिर पति ने कहा, "इधर आ, तेरे कान में चुपके से कहूंगा। किसी से मत कहना। मैंने उस गांव के सयाने को मार कर इसमें बन्द कर रक्खा है।" पत्नी ने और कुछ नहीं पूछा। पति ने बस इतना बता दिया कि उसके पास बहुत पैसा था।

सवेरा हुआ। स्त्री पनघट पर पानी भरने गई। दूसरी स्त्रियों से मिली और उसने एक सहेली को बता दिया—

"उन्होंने कल उस गांव का सयाना मार दिया। पर तू किसी से कहना मत । तुझे भाई की कसम है !" सहेली घर आई । किसी नई बात को पहले-पहल सुनने में सुख सबको होता है। उसने आते ही अपने पति से कहा, उसने औरों से कहा और देखते-देखते बात सारे गांव में फैल गई। उस गांव में कुछ उसके मित्र थे, तो कुछ शत्रु भी। जो शत्रु थे, वे भागे-भागे राजा के पास गये और सारी बात उससे कह आए। राजा ने सिपाही भेजे और उन्होंने उस आदमी को पकड़ लिया। स्त्री रोने लगी। पति मुस्कराया। बोला, "अब क्यों रोती है ? मैंने तुझसे कह दिया था कि किसी से मत कहना। अब अपनी करनी का फल चख।" उस दिन वह अपने किये पर पछताई—मैं न कहती तो उनको राजा के सिपाही पकड़कर न ले जाते। भगवान, अब छूट जायं तो मैं आगे उनकी कोई भी बात किसी से नहीं कहूंगी।

सिपाही उसके पति को राजा के सामने ले गये। राजा ने गुस्से से उसे देखा और पूछा, "तुमने सयाने को मारा है ?" "नहीं महाराज, कौन कहता है ?" उसने कहा। राजा का पारा एकदम चढ़ गया, "सब लोग कहते हैं।" राजा ने वहां पर खड़े उसके शत्रुओं की ओर संकेत किया। शत्रुओं ने कहा, "हां, महाराज, इसकी स्त्री से पूछ लीजिये। उसीने कहा है। इसने लाश को संदूक में बन्द कर रखा है।

आदमी ने कहा, "वह मजाक करती होगी, महाराज !"

शत्रुओं ने कहा, "इसीने तो उससे कहा था, महाराज !"

आदमी ने कहा, "मेरी स्त्री बड़ी बातूनी है। कोई भी बात उसके पेट में नहीं ठहरती। उसे मैंने बहुतेरा समझाया, पर वह अपनी आदत से बाज नहीं आती। इसलिए मैंने जो कहा,

वह झूठ था। उसने जाकर औरों से कह दिया। पुराने लोगों का कहना ठीक था कि स्त्री से कभी सच नहीं कहना चाहिए और ठाकुर (राजा) से झूठ। इसीलिए मैंने उससे झूठ कहा और आपसे सच कह रहा हूं।"

राजा ने संदूक की तलाशी ली। उसमें कुछ नहीं निकला।

आदमी घर आया। स्त्री बैठी रो रही थी। उसे आते देखते ही वह उसके पैरों में गिर पड़ी। पति ने उसे धीरज बंधाया। कहा, "देख, आज के संकट से तो बच आया हूं। आगे की जिम्मेदार अब तू है।"

भैंसिया जाट

किसी गांव में एक किसान रहता था। खेती करता था और भैंसे चराता था। दिन भर काम में लगा रहता था। इधर-उधर की बातें कम सोचता था। न कहीं जाता था, न किसी के पास बैठता था। सदा भैंसों के साथ ही रहता था, इसलिए लोग उसे अनाड़ी समझते थे और 'भैंसिया जाट' कहते थे।

एक दिन पास के गांव में सत्यनारायण की कथा हुई। भैंसिया जाट की स्त्री ने कहा, "गांव की स्त्रियां कथा सुनने जा रही हैं मैं भी जाऊंगी।" भैंसिया ने मना किया, "तू जाकर क्या करेगी? कथा में क्या रक्खा है! तुझे कोई कथा सुननी हो तो शाम को मुझसे सुन लेना। मुझे बहुत कथाएं आती हैं। इतनी देर में तो भैंसों के लिए दो बोझ घास काटे जा सकते हैं।" स्त्री उदास हो गई। उसकी आंखों से आंसू ढलकने

लगे। बोली "तुम्हें तो सपने में भी भैंसें ही दिखाई देती हैं।" भैंसिया चिढ़ गया। बोला, "तो रोती क्यों है ? जा,चली जा। मेरी तरफ से तो चोटी कटवा कर जोगन हो जाना।" स्त्री के बात लग गई। बोली, "भैंसों के साथ तुम्हारी तो अक्ल भी मोटी हो गई है। इतनी उम्र चली गई। कभी दूसरे जनम की भी सोची है ? अभी तक इस घर में एक चूहा भी नहीं जनमा !"

भैंसिया के कोई सन्तान न थी। उसे इस बात का बड़ा दुःख था। उसने पत्नी को जाने को अब ज्यादा मना न किया। पत्नी चली गई और वह भैंसों को लेकर बाहर चला गया। और दिन वह भैंसों को वन में चरने को छोड़ देता था और आप पत्थर के सहारे बैठकर गीत गाता था, पर उस दिन न जाने क्यों, उसे रह-रह कर पत्नी की बातें याद आ रही थीं। अबतक का जीवन उसके सामने आया। अपने निपूते होने का खयाल आया। अगले जनम की बातें सोचने लगा। आखिर उसने सोचा—मैं भी सत्यनारायण की कथा में जाऊंगा। उसने उसी समय अपनी भैंसें घर की ओर हांकी। घर जाकर उन्हें खूंटे पर बांध दिया और खुद भी उसी गांव में चला गया।

वहां बहुत से लोग बैठे थे। मन्दिर का पुजारी कथा कह रहा था। भैंसिया ने उसको नमस्कार किया और चुपके से लोगों के बीच बैठ गया। जो लोग उसको जानते थे, वे चौंके—आज सूरज शायद पश्चिम से निकला है। भैंसिया ने न इधर देखा न उधर, गर्दन नीची करके कथा सुनने लगा। पुजारी-जी कथा के साथ-साथ ज्ञान की बातें भी कहते जाते थे। भैंसिये को वे बहुत अच्छी लगीं। एक बार उन्होंने कहा, "जिसको भगवान मिल गया, समझो,वह इस संसार से तर गया। तब उसके लिए संसार ताप नहीं, पाप नहीं। जिस पर

उसकी दया-दृष्टि हो जाती है, उसको किसी बात की कमी नहीं।"

पुजारीजी की ये बातें भैंसिया के दिल में घर कर गईं। कथा समाप्त हुई तो उसने उनसे मिलने की सोची। वह उनके पास गया और बोला, "आप मेरे गुरु हैं। आपने मुझे जगाया है। बताइये, भगवान कैसे मिल सकते हैं?" पुजारी ने बहुत लोग देखे थे, पर ऐसा आदमी नहीं देखा। वह चिढ़े। यह अजीब आदमी कहां से आगया! मैं इतने साल से भगवान की पूजा कर रहा हूं, मुझे तो भगवान मिला ही नहीं तो इस गंवार को मिल जायगा? पुजारी ने उसकी ओर देखा और कहा, "मूर्ख!" पर भैंसिया उनके चरणों में गिर पड़ा। पुजारीजी को जान छुड़ानी मुश्किल हो गई। उन्होंने उसको उठाकर एक पत्थर दिया और कहा, "ये हैं भगवान-जी! सुबह उठकर खुद नहाना, इन्हें नहलाना, तब इनको भोग चढ़ाना। अगर भगवान न खायें तो खुद भी न खाना।"

भैंसिया बड़ा खुश हुआ। उसने वह पत्थर अपने हाथ में लिया और घर लौट आया। आते ही स्त्री से बोला, "मैं भगवान का भक्त बन गया हूं।" स्त्री ने ताना दिया, "और भैंसे किसके सहारे रहेंगी? मैं कहां जाऊं?" भैंसिया नाराज हुआ, पर चुप रहा। उसने पत्थर को एक किनारे पर स्थापित किया और पत्नी को खीर बनाने के लिए कहा। वह भजन-वजन तो जानता न था, बस पुजारी की बात उसने पकड़ रक्खी थी। उसनें खीर का कटोरा सामने रक्खा और कहा, "आ-आ भगवान, भोग लगा।" भैंसिया यही कहता गया। हर बार वह यही सोचता, भगवान अब आये, अब आये। पर सारा दिन बीत गया, भगवान नहीं आये। भैंसिया ने कहा, "भगवान, मेरे साथ यह कैसा

अन्याय करते हो !" स्त्री दिन भर उसी के पास बैठी कहती रही थी, "खाना खा लो न ! भगवान कहीं ऐसे आते हैं। मरने की क्यों सोच रखी है ?" भैंसिया बोला, "भगवान की कसम, जबतक भगवान भोग न लगा लेंगे, मैं नहीं खाऊंगा।"

भैंसिया मूर्ति के सामने बैठा रहा। पुजारीजी ने उसे एक ही बात सिखाई थी। वह यही कहता गया। इस प्रकार दिन गया, रात गई। दूसरा दिन भी आया। ऐसे ही तीन-चार दिन बीत गए। न भगवान आए, न भैंसिया ने खाना खाया। पत्नी ने उसे बहुत समझाया, पर भैंसिया न माना। पाँचवें दिन भगवान के कानों में बात पड़ी। वे चौंके—कौनसा अनर्थ हुआ है ? वह झट अपने गरुड़ पर सवार हुए और भैंसिया के पास आये। भैंसिया अपने ध्यान में बैठा रट रहा था, "आ-आ भगवान, खीर खा !" भगवान ने कटोरा उठाया और खीर खा ली। भैंसिया की आँखों में ज्योति चमकी। उसने आँख खोली तो देखा, भगवान भोग ले चुके हैं। भैंसिया खुश हुआ। फिर उसने खाना खाया।

अब तो रोज यही होता। भैंसिया भोग देता, भगवान भोग खाते। भैंसिया के लिए यह विस्मय की बात न थी। वह सोचता था कि जितने लोग भगवान की बात करते हैं, उन सबको शायद भगवान इसी तरह दर्शन देते होंगे।

इसी प्रकार महीने बीते, वर्ष बीते। भैंसिया अब पहले जैसा न रहा। अब वह रोज सफाई से रहने लगा। उसके घर में ऋद्धि-सिद्धि आई और एक दिन उसके घर में लड़का भी पैदा हो गया। अब उसको किसी बात की कमी न थी। लोग भी अब उसको चाहने लगे। जिस पर भगवान रीझ जाते हैं, उससे कौन रूठ सकता है ? भैंसिया भी दिनों-दिन भगवान

के सामने झुकता गया।

एक दिन उसे पुजारीजी की याद आई। उसने पत्नी से कहा, "अच्छा खाना बनाना। मैं पुजारी को बुलाने जाता हूं।" पत्नी ने पूछा, "कौन पुजारीजी ?" भैंसिया ने बताया, "अरी, पुजारी को नहीं जानती। उस दिन कथा नहीं सुनी थी ? उन्होंने तो मुझे भगवान के दर्शन करवाये हैं। उन्हें अपने घर बुला लाऊंगा। वह बड़े खुश होंगे।"

पत्नी भोजन बनाने पर जुट गई। भैंसिया पुजारीजी को लेने चल दिया। पुजारीजी उस समय पूजा में बैठे थे। भैंसिया पहुंचते ही चरणों में गिर पड़ा और बोला, "गुरुजी, मुझे भगवान मिल गए। आप मेरे घर चलिये।" पुजारी को उसकी बात पर विश्वास न हुआ। "बोले, बड़ा भगवान वाला आया है ! मुंह धोने की तो अक्ल नहीं। कहां से आ गया सुबह-सुबह ?" उन्होंने बात टालनी चाही, पर भैंसिया न माना। आखिर पुजारी को जाना पड़ा।

रास्ता कुछ चक्कर का था। आगे एक नदी पड़ती थी। नदी पर पुल नहीं था, इसलिए घूमकर जाना पड़ता था। नदी आई तो भैंसिया ने पुजारीजी का हाथ पकड़ा। पुजारी जी पीछे को मुड़े, "नहीं भाई, क्या मारने की ठानी है ! तू तो ठहरा भैंसिया, पर मैं तो मर जाऊंगा।" भैंसिया को अचरज हुआ, इसमें क्या बात है ! उसने तभी जल की एक बूंद हाथ में ली और भगवान का स्मरण किया। अचानक नदी ऊपर-की-ऊपर रुक गई और नीचे-की-नीचे बहने लगी। पुजारी असमंजस में पड़ गया। यह हुआ तो हुआ क्या ?

चलते-रुकते घर में पहुंचे। घर में स्त्री ने बावन व्यंजन बना रक्खे थे। भैंसिया ने पुजारीजी को बिठाया और कहा, "गुरुजी,

मैं जरा भगवान को भोग लगा आऊं।" भैंसिया भोग लगाने चला गया। उसने रोज की तरह खीर का कटोरा भगवान के आगे रक्खा और कहा, "आ-आ, भगवान, भोग लगा। भगवान आये, भोग लगाया और चले गए। भैंसिया लौटा तो पुजारी ने पूछा, "भोग खा लिया भगवान ने?" भैंसिया ने कहा, "रोज सब खा जाते हैं।" पुजारी हँसा, "मुझे तो पूजा करते-करते इतने साल हो गए। मुझे तो भगवान मिले ही नहीं। तुझे कैसे मिल जाते हैं, जिसे न पूजा आती है, न संध्या।" भैंसिया ने कहा, "मैं सच कह रहा हूं। आज यहीं रहिये। कल सुबह भगवान के दर्शन करके जाना।"

पुजारीजी रुक गए। किसी तरह राम-राम जपते उन्होंने रात काटी। सुबह हुई। भैंसिया ने स्नान किया। पुजारीजी को भोग लगाने के लिए बुलाया। वह भी भैंसिया के साथ बैठ गए। उसने न कोई भजन गाया, न कोई आरती की। खीर का कटोरा आगे रक्खा और रोज की तरह कहा, "आ-आ, भगवान, भोग लगा।" तभी एक ज्योति चमकी। भगवान आये और भोग लगाकर अन्तर्धान हो गए।

पुजारीजी देखते रह गए। उन्होंने भैंसिया को गले से लगा लिया। बोले, "तू धन्य है भैंसिया! जिसको लोग जन्म-जन्मान्तर की तपस्या से भी नहीं पा सकते, उसे तूने हृदय की सरलता और अखंड विश्वास से पा लिया।"

एक मूर्ख था। एक दिन वह कहीं जा रहा था। वह बड़ा डरपोक और शक्की था। इसलिए अकेले चलते हुए डरता था। सोचता था, न जाने किस समय कोई उसे छिप कर मार दें। इसलिए वह इधर-उधर देखकर चलता था। अचानक न जाने क्या खयाल आया, उसने पीछे मुड़ कर देखा, कोई न था। उसकी छाया थी। वह कांप उठा, बोला, "वह मेरे साथ कौन चला आ रहा है ?" बड़े साहस से वह छाया की ओर मुड़ा और उससे पूछने लगा, "तू कौन है ?" छाया ने कुछ न कहा। मूर्ख ने समझा—मुझसे डर गया है। वह आगे बढ़ गया। पर साथ ही यह भी शंका थी कि कहीं अभी भी पीछा न कर रहा हो। वह एक बार फिर मुड़ा। फिर वही छाया दिखाई दी। मूर्ख घबराया। अबकी बार उसने हाथ उठाकर उसे रुकने के लिए संकेत किया। तभी छाया का हाथ टोपी की ओर उठता हुआ दिखाई दिया। मूर्ख ने समझा, मेरी टोपी मांग रहा है। उसने अपनी टोपी उसकी ओर फेंक दी और चलने लगा।

आगे चलकर उसे फिर वही शंका हुई, उसने पीछे मुड़ कर देखा। छाया अभी भी पीछे-पीछे चली आ रही थी। मूर्ख चिढ़ उठा,—"अब क्या चाहिए तुझे ?" उसने पीटने के लिए हाथ बढ़ाया। छाया ने भी हलचल की ! छाया में उसके कुर्ते की ओर संकेत दिखाई दिया। मूर्ख ने कुर्ता उतार डाला

और उसकी ओर फेंककर कहा, "ले, अब तो खुश हो।"

मूर्ख फिर आगे बढ़ा। उसे संतोष था कि बला टली। पर मोड पर आते ही उसे फिर छाया दिखाई दी। अबकी बार उसे बड़ा गुस्सा आया। अब उसके शरीर पर धोती के सिवा कुछ न था। बेचारा क्या करता! धोती दे नहीं सकता था, आगे बढ़ नहीं सकता था। आखिर सिर पर हाथ रख कर वह वहीं पर बैठ गया और जोर-जोर से रोने-चिल्लाने लगा।

तभी उस रास्ते से एक चतुर आदमी निकला। उसने उसे रोते सुना, वह रुक गया। रोने का कारण पूछा। मूर्ख ने छाया की ओर संकेत किया और कहा. "यह मेरा पीछा कर रहा है। मैंने इसे अपनी टोपी दी, फिर कुर्ता दिया। यह न माना। अब यह मेरी धोती मांग रहा है।"

चतुर आदमी मुस्कराया और बोला, "चिन्ता न करो। शाम तक यहीं बैठे रहो। वह अपने-आप चला जायगा।

मूर्ख ने उसकी बात मान ली। वह दिन भर वहीं बैठा रहा। शाम हुई। दिन डूबा। धूप समाप्त हुई। तब मूर्ख उठ खड़ा हुआ। अब उसके पीछे कोई छाया न थी। उसने चैन की सांस ली। जान बची। उसने उस चतुर आदमी को शाबाशी दी।

चन्द्रावती

ऊंचे लगनपुर में एक राजा राज करता था। उसका नाम था हरिश्चन्द्र। उसके कोई सन्तान न थी। आखिर उसने तपस्या की। साठ बरस की उम्र में उसके एक लड़का हुआ। राजा बहुत खुश हुआ। उसने काशी के पंडित बुलाये और उनसे कहा, "इस लड़के की राशि और भाग्य देखो। पंडितों ने पोथी-पत्रा निकाला और बताया, "राजन, सब ठीक है। यह काटे नहीं कटेगा, मारे नहीं मरेगा। पर इसके भाग्य में एक अल्प मृत्यु लिखी है। अगर पांच दिन के भीतर ही इसका विवाह कर दिया जाय तो यह युग-युग तक जीता रहेगा।" राजा चिन्ता में पड़ गया। बोला, "पांच दिन के बालक को लड़की कौन देगा?" पंडित ने समझाया, "सब-कुछ हो सकता है।" मंत्री ने यह काम अपने ऊपर ले लिया। जगह-जगह कन्या की खोज में ब्राह्मण भेजे गए। वह चारों दिशाओं, चौरासी धामों में फिरे, पर किसी ने पांच दिन के

बालक को लड़की देना स्वीकार न किया।

जब सब निराश लौट आये तो राजा को बड़ी चिन्ता हुई। बुढ़ापे की संतान और असमय की फसल बड़ी प्यारी होती है। वह दिन-रात यही सोचता, क्या करे? कोई रास्ता ही न सूझता था। आखिर मंत्री के दिमाग में एक बात आई। पड़ोस में ही राजा शिशुपाल का राज्य था। उसकी सोलह साल की एक कन्या चन्द्रावती थी। मंत्री ने राजा से जाकर यह बात कही। राजा ने कहा, "पर वह मेरे पांच दिन के लड़के को अपनी सोलह बरस की कन्या क्यों देगा ?" मंत्री ने कहा, "मेरा बीस बरस का लड़का है। दिखाने के लिए उसे पालकी पर बिठा लेंगे।"

आखिर ऐसा ही हुआ। पालकी पर मंत्री का लड़का बिठाया गया। पांच दिन के बालक को साथ रखा गया। बरात सजी और शिशुपाल के राज्य की ओर चल दी। शिशुपाल के राज्य में खुशियां मनाई जा रही थी। बरात का स्वागत हुआ। विवाह की लग्न आधी रात के समय थी। इसलिए भोजन के बाद सब सो गए। कन्या-पक्ष के लोग भी सब सोने चले गए। चन्द्रावती अभी तक सोई न थी। वह वरमाला गूंथ रही थी।

मंत्री ने देखा कि सब सो गए हैं। उसने एक कागज पर कुछ लिखा और पांच दिन के बालक के झगले की तनी में बांध दिया। फिर चुपके से जाकर उसे चन्द्रावती के द्वार पर रख आया। बालक रोने लगा। चन्द्रावती चौंकी। यह अपशकुन कैसा! वह बाहर आई। देखा, एक बच्चा रो रहा है। उसने उसे गोद में उठाया। झगले से लटकता हुआ कागज दिखाई दिया। उसने उसे पढ़ा। अरे, यह क्या लिखा है? क्या यह मेरा पति है? यह बच्चा मेरा पति कैसे हो

सकता है ? चन्द्रावती सिसक-सिसक कर रोने लगी ।

बहुत देर तक यही हालत रही। फिर बाहर आई तो आश्चर्य में पड़ गई । सब बराती भाग गए थे । घर के लोगों को कुछ पता नहीं था । सब सोये हुए थे । उसने किसी को जगाया नहीं । अपने पिता और ससुर के कुल की प्रतिष्ठा के लिए चुपके से ब्राह्मण को बुलाया और उस बालक के साथ अपने फेरे करवा दिये । किसी को उसने इस बात का पता न होने दिया और रात बीतने से पहले वह किसी को बिना बताये लगनपुर चल दी ।

वह अकेली थी । घर से कभी बाहर नहीं निकली थी । उसे रास्ता भी मालूम न था । संयोग से वह जंगल के रास्ते पर पड़ गई । रास्ता लम्बा था । दिन बीत गया । रात हो गई । नजदीक कोई बस्ती न थी । रास्ते में एक पीपल का पेड़ था । उसने उसी के नीचे ठहरने की सोची । संयोग से उस पेड़ पर महादेव-पार्वती रहा करते थे । उस समय महादेव सोये हुए थे । पार्वती उनके चरणों में बैठी थी । बालक भूख से रोया तो पार्वती चौंकी । उन्होंने महादेव को जगाया, "स्वामी,उठो तो सही । हमारे पेड़ के नीचे कौन आया है ?" महादेव ने कहा, "आने भी दो । तुम्हें क्या पड़ी है ?" बालक का रोना बढ़ता जा रहा था। पार्वती से न रहा गया । उन्होंने महादेव को जगाया । महादेव नींद भंग करने के लिए पहले तो बिगड़े, फिर कहने लगे, "तुम बावली हो गई हो । यह शिशुपाल की कन्या है और यह बच्चा इसका पति है ।" पार्वती हक्की-बक्की रह गई। यह क्या हो गया ? महादेव ने सारी बात कह सुनाई । पार्वती ने भी सारी बात सुन कर ही सांस ली। बोली, "तो इनपर दया कीजिये, भगवन ।" महादेव ने कहा, "अच्छा, तो सुनने वाला सुनें, समझने वाला समझे ! अगर यह अपनी उंगली काटे तो उससे दूध निकलने लगेगा ।"

चन्द्रावती ने सुना और उसने अपने सत का स्मरण किया, "यदि मैंने सचमुच इस पांच दिन के बालक को पति माना हो तो मेरी उंगली से दूध निकले।" उसने अपनी उंगली को चीर दिया। सचमुच उससे दूध निकल पड़ा। तब उसने उसे दूध पिलाया और दोनों सो गए।

सवेरा हुआ। शिखरों पर धूप चढ़ी। दिशाएं जागीं। चन्द्रावती उठी। भूख से उसके प्राण छटपटाने लगे, आगे बढ़ने को पैर नहीं उठे। चन्द्रावती ने पेड़ को देखा और मन-ही-मन कहा, "मैं यहां से तबतक न उठूंगी जबतक मेरा पति जवान न हो जाय।" वह दिन भर उसी पेड़ के नीचे बैठी रही। न खाना खाया, न पानी पिया। पार्वती को उसे देखकर बड़ी दया आई। उन्होंने महादेव से कहा, "यह लड़की भूख से मर जायेगी। हम पर पाप लगेगा। बेचारी के साथ अन्याय हुआ है। कुछ दया कीजिये न!" महादेव ने कहा, "मैं क्या करूं, पार्वती? सब अपने-अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं।" पर पार्वती कब मानने वाली थीं। वह उनके पीछे पड़ गईं और अपनी बात मनवा कर ही मानीं। अब क्या चाहिए था। आठों सिद्धि, नवों निधि उस पेड़ के नीचे बसती थीं। उनको किस बात की कमी थी? और बच्चे जैसे बरसों में बढ़ते हैं, चन्द्रावती का पति वैसा दिनों में बढ़ने लगा। थोड़े ही दिनों में उसका शरीर लम्बा हो गया और वह जवान लगने लगा।

तभी उस वन में एक राजा शिकार खेलने आया। घूमते-घूमते पीपल के पेड़ के नीचे पहुंचा। उसने चन्द्रावती को देखा और उस पर मुग्ध हो गया। उसने रोज उधर से जाना शुरू कर दिया और चन्द्रावती को घूर-घूर कर देखने लगा। उसके पति से भी उसने दोस्ती कर ली। वह उसे

मारने की सोचने लगा। चन्द्रावती को शंका हुई। उसने अपने पति को राजा के साथ जाने से मना किया। कहा, "मुझे डर लगता है। अब हम यहां नहीं रहेंगे। चलो, अपने घर चलें।" पति को कुछ मालूम न था। चन्द्रावती ने ही उसे बताया कि तुम लगनपुर के राजकुमार हो।

राजकुमार ने चन्द्रावती की बात मान ली और वे लगनपुर को चल दिए। अभी लगनपुर कुछ दूर था, रात को वे एक गांव में पहुंच गए। वहां सात भाई चोर रहते थे। उन सात भाई चोरों की एक बहन दूती थी। चोर कहीं चोरी करने गये थे। दूती घर में थी। उसने दूर से ही उन दोनों को आते देखा और मन ही-मन सोचने लगी, कैसी सुन्दर जोड़ी है। यह लड़की तो मेरे भाइयों के लायक थी। तभी उसके दिमाग में एक बात उठी। वह बाहर आई और राजकुमार से बोली, "कैसे हो, भतीजे।" राजकुमार सकुचाया। दूती बोली, "मुझे नहीं पहचाना, क्या? जब तू छोटा था तभी मेरा ब्याह हो चुका था। खैर, कोई बात नहीं, बैठो। रात हो गई। अब आगे कहां जाओगे?"

चन्द्रावती ने राजकुमार से चलने का संकेत किया। राजकुमार सीधा-सादा था। उसे किसी अनिष्ट का स्वप्न में भी ध्यान न था। "बैठो न, चन्द्रावती!" उसने कहा, "जब कोई बैठने को कहता है तो बैठ जाना चाहिए।" अब चन्द्रावती क्या कहती? वह भी बैठ गई।

दूती ने आसन बिछाया। उनका भोजन कराया और सुला दिया। रात भर दूती को नींद न आई। वह अपने सात भाई चोरों की प्रतीक्षा में रही। किन्तु चोर उस रात न लौटे। सुबह हुई चन्द्रावती ने राजकुमार को जगाया और वे आगे बढ़ चले।

दोपहर हुई तो चोर लौटे। दूती ने उनको खूब कोसा,

"अरे अभागो, अब आ रहे हो ! अबतक मैंने तुम्हारे लिए एक खूबसूरत लड़की को रोक रक्खा था । तुम तो सात हो, वह एक थी । क्या तुम उसके पति को मार कर उसको नहीं छीन सकते थे ?" चोरों को चाहिए क्या था ? वे राजकुमार के पीछे हो गए । छह चोर तेजी से भागे, सातवां काना था । वह धीरे-धीरे पीछे जाता रहा । कुछ दूर जाकर छः भाइयों ने राजकुमार और चन्द्रावती को पकड़ लिया' और जो मन में आया कहने लगे, "कहां जाते हो, चोरो ? हमारे घर को लूट कर कहां भागे जाते हो ? चन्द्रावती समझ गई । "मैंने पहले ही कह दिया था, यहां नहीं बैठना चाहिए । पर तुम नहीं माने । अब देखो, राज़कुमार ने धीरज बंधाया । चोरों ने हमला किया । राजकुमार ने तलवार निकाली और एक-एक कर सबको मार गिराया । वे दोनों फिर अपनी घोड़ी पर सवार होकर आगे चल दिए ।

काना चोर पीछे-पीछे चला आ रहा था । उसने अपने छः भाई मरे हुए देखे तो वह सारी बात समझ गया । शेर जैसे गोली खाकर और खूंख्वार होता है, उसी प्रकार गुस्से से भर कर वह राजकुमार की खोज में आगे बढ़ा । बहुत दूर भी न जा पाया था कि उसे राजकुमार की घोड़ी दिखाई दी । वह पीछे हो लिया । आगे जाकर राजकुमार और चन्द्रावती घोड़ी से उतरे और आराम करने बैठ गए । तभी काना चोर वहाँ पहुंच गया । वह राजकुमार के पास जाकर सीधा खड़ा हो गया और नमस्कार करके बोला, "महाराज, मेरा इस दुनिया में कोई नहीं है । मुझे अपना सेवक बना लीजिए ।"

राजकुमार को उस पर दया आ गई । उसने राय लेने के लिए चन्द्रावती की ओर देखा और कहा, "रानी, इसे रख लो । बेचारा अनाथ है ।" चन्द्रावती चुप रही । राजकुमार उसके

दिल की बात जानता था, पर दयालु था। उसने कहा, "कोई बात नहीं, बेचारा गरीब है। हमारा क्या बिगाड़ लेगा?" चन्द्रावती अब क्या कहती? काने चोर को उन्होंने रख लिया।

पास ही एक नदी थी। राजकुमार स्नान के लिए चला गया। चन्द्रावती भोजन बनाने लगी। घोड़ी घास चर रही थी। तलवार सिरहाने पर पड़ी थी। काने चोर ने सोचा, मौका अच्छा है। उसने चुपके से राजकुमार की तलवार उठाई और नहाते हुए राजकुमार को मार दिया। खून से भरी तलवार लेकर जब वह लौटा तो चन्द्रावती कांप उठी। काना चोर जोर से हँसने लगा। उसने उसको जोर से पकड़ा, खींचा, घसीटा और घोड़ी पर बिठा कर ले जाने लगा, "अब देख तेरे क्या हाल करता हूं। तूने मेरे छः भाई मरवाये।" चन्द्रावती पहले तो रोती रही, फिर उसने साहस बांधा। उसने चोर के हाथ जोड़े, "मुझे माफ करदो। तुम मेरे राजा हो। मैं तुम्हारी हूं। तुमने अच्छा किया, मुझे उससे बचा लिया। मैं खुद उससे पीछा छुड़ाना चाहती थी।" चोर बड़ा खुश हुआ। प्यार की आंखों से एक बार चन्द्रावती ने उसे देखा। वह मुग्ध हो गया। कुछ दूर जाकर एक कुंआ आया। चन्द्रावती ने कहा, "प्यास लगी है, पानी पिला दो।" चोर ने ध्यान न दिया। चन्द्रावती ने कहा, "तुम कितने अच्छे थे। तुमने यहां पर मुझे पानी पिलाया था।" काना चोर घोड़े से उतरा, और कुएं में पानी देखने लगा। तभी चन्द्रावती ने उसे गुस्से में लात मारी और वह कुएं में गिर पड़ा। स्वयं वह बिजली की तरह घोड़ी पर सवार हुई और बड़ी तेजी से वहां पहुंची, जहाँ उसके पति की लाश पड़ी थी। उसने सिर को धड़ से मिलाया और अपने सत का स्मरण करते हुए कहा, "हे महादेव, अगर मैंने सचमुच पांच दिन के बालक को पति माना हो, तो मेरा पति जिन्दा हो जाय।"

महादेव समाधि में बैठे थे । पार्वती ने उन्हें जगाया, "देव, अनर्थ हो गया । चन्द्रावती दु:ख में पड़ी है ।" महादेव ने कहा, "तुमने मेरी आफत कर रक्खी है । मैं कुछ नहीं कर सकता ।" पार्वती रूठ गईं । सारा दिन बीत गया । न महादेव पार्वती से बोले, न पार्वती महादेव से बोलीं । आखिर महादेव ने पानी के दो छींटे मारे और राजकुमार जीवित हो उठा । वह आंखें मलते हुए उठा और कहने लगा, "आज मैं बहुत सोया ।" राजकुमार कुछ नहीं समझा । चन्द्रावती ने उसे चलने को कहा । उन्होंने घोड़ी सजाई और आगे चल दिए । अब वह अपने राज्य की सीमा पर पहुंच चुके थे । सरहद पर एक नगाड़ा रक्खा हुआ था । राजकुमार ने उसे बजाया । सारे लगनपुर में हलचल मच गई । लोगों ने कहा, "या तो राजा आया है या दुश्मन की सेना चढ़ आई है ।" राजा हरिश्चन्द्र ने मंत्री को बुलाया और पूछा, "कौन आया है ?" मंत्री ने वही बात कही, जो और लोग कहते थे । पर राजा ने सवाल किया "पर शत्रु मित्र की पहचान कैसे हो ?" मंत्री ने कहा, महाराज, रास्ते में कपड़े बिछा देते हैं । अगर शत्रु होगा तो वह कपड़ों के ऊपर चलता आयगा और अगर मित्र हुआ तो कपड़े उठाकर चलेगा ।"

फिर क्या था ! कपड़े बिछा दिये गए । राजकुमार ने देखा और असमंजस में पड़ गया । पूछा, "यह क्या है ?" चन्द्रावती नें कहा, "यह हमारा सत्कार हो रहा है, स्वामी ?" राजकुमार और चन्द्रावती कपड़ों को एक ओर करते हुए आगे बढ़े । लोग उन्हें देखते रहे । दोनों ने राज भवन में प्रवेश किया । पुत्र पिता के गले लगा, बहू सास के चरणों में पड़ी ।

राज्य में मंगल-गान हुआ, ढोल बजे और खुशियाँ मनाई गईं ।

घरों के आसपास पेड़ों की शाखाओं पर एक छोटी-सी चिड़िया बड़े दुःख-भरे स्वरों में चहकती फिरती है। लोग कहते हैं, "वह कहती है, हा मैं क्या करूं ?"

कहते हैं, किसी गांव में एक परिवार रहता था—खूब बड़ा, सात भाइयों का। उनकी सात बहुएं थीं। सबसे छोटे भाई की बहू बड़ी सुन्दर, शर्मीली और सहृदय थी। उसका नाम रूपा था। रूपा जितनी सहृदय थी, उसकी सास उतनी ही कठोर थी। वह उसे जरा-जरा-सी बात पर झिड़क देती थी और रोज गाली देती थी। रूपा उससे बहुत डरती थी। जेठों के सामने उसे दब कर रहना पड़ता था। जिठानियां उसे 'छोटी' कह कर उससे सब काम करवा लेती थीं। उस घर में उसके लिए सभी तरफ डर-ही-डर था।

आषाढ़ का महीना था। वर्षा के पहले बादल छाये और खेत दो ही दिन में लहलहा उठे। धान रोपने की तैयारियाँ होने लगीं। तंबाकू कूटा गया, गेहूं पीसे गए, रोपनी शुरू हुई। परिवार के सब लोग खेत पर चले गए। रूपा की गोद में दूध-पीता बच्चा था। इसलिए सास ने कहा, "तू घर पर ही रह। हम लोगों के लिए दोपहर को रोटी बनाकर लाना। देर न करना।"

रूपा खुश थी। पिछली रात वह बहुत देर में सोई थी। उसे घर का बहुत-सा काम करना पड़ता। थकान के मारे वह चूर थी। इसलिए खेतों में जाने से वह भी बचना चाहती थी। पर जो काम उसके लिए छोड़ दिया गया था, वह भी कम न था। उसने जल्दी से चूल्हे में आग जलाई, कढ़ाही में सब्जी चढ़ाई और फिर आटा गूंथने लगी। इतने में उसका बच्चा रोने लगा। वह हैरान हुई। अब क्या करूं? बच्चे को देखूं या रोटी बनाऊं? पर बच्चा और ज्यादा रोने लगा। वह उठकर उसके पास गई और दूध पिलाने लगी। सोचा, बच्चे को दूध पिलाकर रोटी पका लूंगी। पर वह थकी थी। बच्चे को दूध पिलाते-पिलाते उसे नींद आ गई।

उसे कोई जगानेवाला न था। वह जब उठी तो चूल्हा ठंडा पड़ा था, सूरज पश्चिमी धार के पार जा चुका था और धूप उड़कर शिखरों पर चली गई थी। उसने इधर-उधर देखा, इधर-उधर दौड़ी, पर आग बुझी थी। वह क्या करती! खाने का समय बीत चुका था। उसे खयाल आया, अब तो वे लोग आने वाले होंगे। न जाने क्या कहेंगे? सास, जेठ, पति, जिठानी, एक-एक करके सबके क्रोध-भरे चेहरे उसकी आँखों में चक्कर काटने लगे। वह कांप उठी, "हा, मैं क्या करूं!" उसकी सांस घुटने लगी और उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

कहते हैं, वे प्राण एक चिड़िया में पड़ गए और अब वही रूपा चिड़िया बनकर अपना दुःख आज भी रोती रहती है—"हा, मैं क्या करूं?"

चातुर्य बल

एक गांव में एक ब्राह्मण रहता था। उसके पांच भाई थे। पांच भाइयों की पांच पत्नियां थीं। उनके बच्चे भी थे। खूब भरा-पूरा परिवार था।

सहसा गांव में एक राक्षस आया और वह एक-एक कर सबको खाने लगा। एक दिन एक की बारी आती थी, दूसरे दिन दूसरे की। इस प्रकार वह कुछ ही दिनों में सारा गाँव चौपट कर गया। ब्राह्मण-परिवार भी न बच सका। उसने पांचों भाइयों को खा लिया। उनकी बहुओं और बच्चों को भी न छोड़ा। केवल सबसे छोटी बहू बच गई। वह मायके गई हुई थी। उसके पेट में बच्चा था। जब उसने सुना कि

उसका सारा परिवार राक्षम ने खा लिया, तो वह वापस नहीं आई, मायके में ही रहने लगी। आती भी कैसे, ससुराल का घर उजड़ चुका था। उसमें अब राक्षस ने डेरा डाल दिया था।

छोटी बहू के मायके में ही एक लड़का हुआ। वह बड़ा होनहार था। जैसे और लड़के महीनों में बढ़ते हैं, वैसे वह दिनों में बढ़ने लगा। ननिहाल के लड़के उसे बहुत प्यार करते थे। वह उनके साथ-साथ भाइयों की तरह खेला करता था। एक दिन न जाने किस बात पर झगड़ा हुआ कि एक लड़के ने ताना दिया, "अपना तो तेरा कोई घर ही नहीं।" उसके हृदय में ठेस-सी लगी। रोता-सिसकता वह मां के पास गया और बोला, "हमारा घर कहां है, मां ?" मां अवाक् रह गई। बेटे ने फिर वही प्रश्न दुहराया। मां क्या कहती ? "यही तो है," उसने कहा। लड़के ने जिद की, यह तो मामा का घर है। मां के लिए अब बात को छिपाना संभव न था। उसने राक्षस की बात कह दी। लड़का उत्तेजित हुआ। उसने हठ की, "मैं अपने घर जाऊंगा।" मां ने मना किया, पर वह न माना। शेर को कौन रोक सकता है? उसका खून खौल रहा था। वह मां को समझा बुझाकर अकेला चल दिया।

लड़का अपने घर के द्वार पर पहुंचा। राक्षस अन्दर लेटा था। लड़के ने द्वार खटखटाया और बाहर से ही अभिवादन किया। राक्षस चौंका। उसने बाहर झांका, देखा, एक सुन्दर छोटा बालक बाहर खड़ा था . उसके मुंह में पानी भर आया उसका आहार आज घर में ही आ गया है। वह मन-ही-मन खुश हुआ। उसने लड़के को अन्दर बुलाया। उसकी खूब आवभगत

की। खिलाया-पिलाया। लड़के ने कहा, "तुम कितने अच्छे हो, राक्षस दादा! अब मुझे अपने ही पास रख लो। पर मुझे अभी मत खाना, जब कुछ मोटा हो जाऊं तब खा लेना। तबतक मैं तुम्हारे पैर दाबूंगा, तुम्हारा खाना पकाऊंगा।"

राक्षस ने सोचा, लड़का ठीक कहता है। यह मेरी सेवा कर लेगा। जब बड़ा हो जायगा तो मैं इसे खा लूंगा। वे दोनों साथ-साथ रहने लगे। राक्षस रोज सुबह बाहर चला जाता और खाने-पीने की चीजें जुटाता। लड़का उसके लिए खाना बनाता। इसी तरह दिन कटने लगे। राक्षस और लड़के में कभी झगड़ा नहीं हुआ। एक दिन जब राक्षस सोने लगा तो लड़के ने पूछा, "दादा, तुम रोज सबेरे-सबेरे कहां जाया करते हो?" राक्षस ने कहा, "ब्रह्मा के यहां।" लड़के को विस्मय हुआ और फिर कुछ सोचने लगा। राक्षस ने कहा, "क्या सोच रहा है?" लड़के ने कहा, "तुम दादा, ब्रह्मा के यहां जाते ही हो। दादा, मेरा भी एक काम करोगे?" राक्षस ने स्वीकृति के लिए गर्दन हिलाई। लड़के ने अपनी बात कही, "ब्रह्मा से पूछना, मेरी उम्र कितनी है?" राक्षस ने कहा, "अच्छा।"

सवेरा हुआ, राक्षस ने खाना खाया और जाने लगा। लड़के ने फिर याद दिलाई, "दादा, मेरी बात न भूलना।" राक्षस ने कहा, "अच्छा।" और ब्रह्मा के पास चल दिया। दिन भर उसने ब्रह्मा की सेवा की। संध्या हुई तो घर आते हुए उसने बात छेड़ी, "ब्रह्माजी, मेरे घर में एक लड़का रहता है। उसने पूछा है कि उसकी उम्र कितनी है।" ब्रह्मा ने आंख मूंदी और कहा, "सौ बरस।"

राक्षस घर लौटा। लड़के ने खाना-पीना खिलाया और जब सोने का समय हुआ तो कहा, "मेरी बात का क्या हुआ ?" राक्षस ने कहा, "बताता हूं।" लड़के ने कहा, "कहो न!" राक्षस ने कहा, "सौ बरस।" लड़का रोने लगा। राक्षस असमंजस में पड़ गया। बोला, "क्या हुआ ?" लड़के ने कहा, "दादा ब्रह्मा से कह देना, मैं इतने बरस जीना नहीं चाहता। मेरी आयु में से या तो एक बरस घटा दो या बढ़ा दो।" राक्षस ने 'हां' कहा और सो गया।

सुबह हुई। राक्षस खा-पीकर चलने को हुआ। लड़के ने कहा, "दादा, मेरी बात न भूलना।" राक्षस ने "हां" की और ब्रह्मलोक को चल दिया। दिन भर उसने ब्रह्मा की सेवा की। संध्या होने लगी तो उसको लड़के की बात याद आई। उसने ब्रह्मा से कहा, "उस लड़के ने कहा है कि उसकी आयु में या तो एक बरस बढ़ा दो या एक बरस घटा दो।" ब्रह्मा मुस्कराते, बोले, "वह लड़का मूर्ख है। उसमें से तिल भर न घट सकता है, न बढ़ सकता है।"

राक्षस घर लौटा। लड़का प्रतीक्षा में था ही। उसने बड़े प्रेम से उसको खाना खिलाया और जब सोने का समय हुआ तो पूछा, "दादा, मेरी बात का क्या हुआ ?" राक्षस ने कहा, "मैं क्या करूं ? ब्रह्मा ने कहा है, तुम्हारी उम्र न तिल भर घट सकती है, न बढ़ सकती है।"

लड़का अब की बार जोर से हंसा। चिल्लाया, "मेरी आयु न घट सकती है, न बढ़ सकती है। ठीक है न, राक्षस दादा!" अंगारे के समान जलती आंखों से उसने लड़के को देखा। लड़के ने ताना दिया "खाओगे राक्षस दादा!" राक्षस गरजा। लड़का हंसा, "तुम मुझे नहीं खा सकते। मेरी आयु

सौ बरस है। अब तुम मेरे घर से निकल जाओ, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूंगा।" राक्षस हक्का-बक्का रह गया। बेचारा क्या करता ? गुर्राया, गिड़गिड़ाया, पर लड़के ने उसे निकाल ही दिया।

राक्षस के जाते ही उस गांव के लोग फिर से बसने लगे। लड़के ने भी अपनी माँ को वहीं बुला लिया और दोनों वहीं रहने लगे।

टांगों वाला काम करे
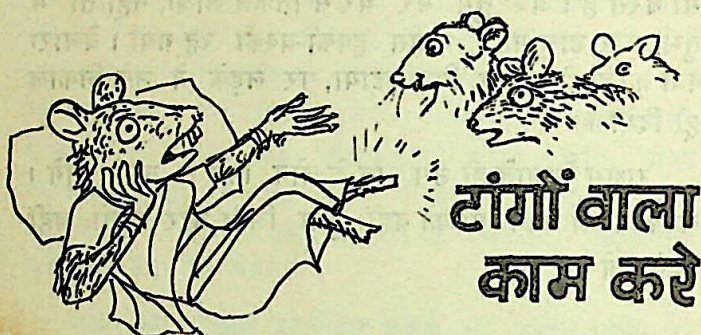
एक चूहा था। एक चुहिया थी। चूहा दिन भर काम करता था। चुहिया निकम्मी थी। उसे पैर पसार कर बैठे रहना अच्छा लगता था। उसका काम सिर्फ गप्पें, मारना था। बातें बनाने में वह तेज थी। चूहा जब उसे काम करने को कहता तो वह बातों-ही-बातों में टाल जाती। कोई-न-कोई बहाना बना देती, "मेरी दोनों टांगें दुःख रही हैं। तुम अकेले ही कर लो।" कभी बुखार का बहाना करती, कभी सिर-दर्द का। बेचारा चूहा परेशान था।

चूहा अकेला ही खेतों में जाता। जो कुछ मिलता, चुहिया के लिए भी उठा लाता। चुहिया उसे खा लेती और फिर चूहे को इधर-उधर की बातें सुनाने लगती। एक दिन घर में खाने को कुछ भी नहीं था। पास के खेत में धान पक रहे थे और उनकी गंध उन तक आ रही थी। चुहिया बोली, "वाह, धान कैसे पक रहे हैं! दो-चार दिन में ही ये काट लिये जायंगे। कितना अच्छा होता कि ये सारे-के-सारे हमारे घर में जमा हो जायें।" चूहा मुस्कराया, "जब देखो, तब तू ऐसी ही बातें कहा करती है। तू चाहती है कि बैठे-ही-बैठे सब

कुछ तेरे मुंह में आ जाय। यहीं से देख ले। तेरा पेट भर जायगा।"

चूहिया रोष में आ गई। चूहे ने उसे मनाया। चुहिया रोने लगी, "इस घर में आकर मुझे क्या मिला?" चूहे ने कहा, "अच्छा, चलो, उन खेतों में चलें। हम दोनों बहुत-सा धान इकट्ठा कर लायंगे।" फिर क्या था! चुहिया कराहने लगी, "कैसे चलूं, मेरी टांगें दुःख रही हैं। तुम अकेले चले जाओ। जल्दी जाओ मुझे भूख लगी है।"

चूहे ने गुस्से में कहा, "भूख लगी है तो चल न! खेत दूर थोड़े ही हैं।" पर चुहिया न मानी। जोर-जोर से कराहने लगी, "कैसे निठुर के पाले पड़ी हूं। देखो न मेरी टांगें दुख रही हैं।

चूहे को ताव आ गया। उनने कहा, "रोज-रोज तेरी टांगें, टांगें... क्या हो गया तेरी टांगों को!" इतना कहकर उसनें उसकी दोनों टांगें पकड़ीं और तोड़ डालीं।

चुहिया चीखी-चिल्लाई। चूहा बोला, "रोज-रोज का झगड़ा मिटा। हाथ-पैर वाला बैठा रहे तो बुरा लगता है। अब तू लंगड़ी है। मैं कामकाज के लिए नहीं कहूंगा। बैठे-बैठे खिलाया करूंगा।"

चूहिया का रोना बन्द हुआ। पास-पड़ोस के सब चूहे आ गए?" चूहे ने सारी कथा कह सुनाई। सुनकर लोग खूब हंसे।

अब और चूहे-चुहिया खाने की खोज में जाते। लंगड़ी चुहिया योंही पड़ी रहती। वे उधर से जाते हुए मुस्कराते हुए उनकी तरफ देखते और कभी चिढ़ाने के लिए कहते,

"मेरी टांगें दुःख रही हैं दो-दो,
जा रे चूहे तू ही तू !"

चुहिया बहुत नाराज होती। सोचती, अगर उसके टांगें होतीं तो न जाने क्या-क्या कर डालती !
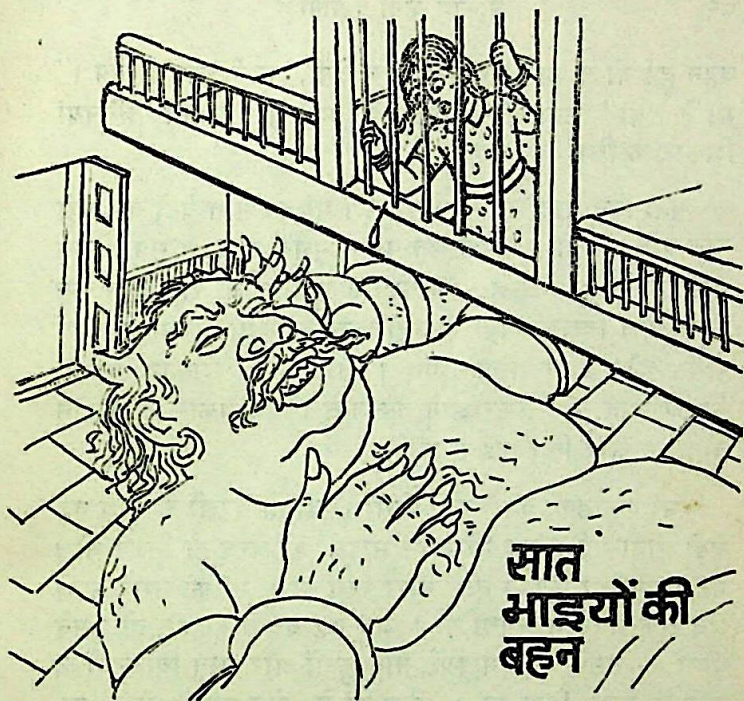
किसी जंगल में सात भाई रहते थे। उनकी एक मां थी और सात बिल्लियां और सात कुत्ते थे। मां घर पर रहा करती थी। सात भाई, सात कुत्ते और सात बिल्लियां शिकार के लिए चले जाते थे। शिकार की खोज में कभी उनको कई-कई दिन लग जाते थे, कभी महीनों तक न लौटते थे। मां की उन्हें चिन्ता न रहती थी। किसी पहाड़ की चोटी से वे अपनी झोंपड़ी से निकलते धुंए को देख लिया करते थे और समझ लेते थे कि मां जिन्दा है। मां के पेट में बच्चा था। एक दिन शिकार को जाते हुए सात भाइयों ने कहा, "मां, न जाने हम कब लौटें! किसी चोटी से हम झोंपड़ी को देखते रहेंगे। अगर

बहन हुई तो तू छत पर मूसल रख देना, भाई हुआ तो सूप।" मां ने "हां" कहा और सात भाई, सात कुत्ते, सात बिल्लियां शिकार के लिए चले गए।

कुछ दिन बाद लड़की पैदा हुई। मां को सात बेटों की कही बात याद न रही। उसने छत पर न मूसल रखा, न सूप। सात भाई दूर से देखते रहे। झोंपड़ी से धुंआ आता रहा, पर छत पर कुछ न दिखाई दिया। उन्होंने समझ लिया कि मां भूल गई होगी और वे दूर निकल गए। जहां जाते, शिकार मारते, बैठकर खाते और फिर आगे बढ़ जाते। इस प्रकार कई महीने बीत गए और फिर कई साल निकल गए।

मां ने लड़की को पाला-पोसा। बीतते बरसों के साथ वह बड़ी होती गई। वह भी अपने भाइयों की तरह ही निडर थी। मां ने इसलिए उसका नाम वीरा रखा था। मां को उसके साथ अब अकेलापन न लगता था। जब वह बच्ची ही थी तो उसने वीरा को उसके सात भाइयों, सात कुत्तों और सात बिल्लियों के बारे में बता दिया था। वीरा मां से रोज पूछती थी, "मां, भाई कब आयंगे ?" मां कहती, "जल्दी ही आजायंगे।"

उस जंगल के दूसरे छोर पर एक राक्षस रहता था। एक दिन वह घूमता हुआ उधर से आ निकला। मां ने उसे आते हुए देख लिया। उसने वीरा को छिपा दिया। राक्षस ने वीरा को तो न देखा, पर मां को खा लिया। वीरा मां के बिना बहुत रोई। पर क्या करती ! किसी तरह रहने लगी। सोचती थी, "कभी मेरे भाई आयंगे। मैं उनके साथ रहूंगी।"

एक दिन सात भाई लौटे। पहाड़ की चोटी पर आकर उन्होंने अपने घर को देखा। धुंआ नहीं दिखाई दे रहा था। छोटे भाई ने कहा, "आज हमारी झोंपड़ी सूनी दिखाई दे रही

है।" दूसरे ने कहा, "क्या पता, मां जिन्दा भी है या नहीं ?" भली-बुरी सोचते वे घर आये। दरवाजे पर फूलों का पौधा जैसा-का-तैसा रखा था। सात भाइयों ने द्वार खोले। चूल्हे पर आग जली थी। बर्तनों में खाना पका था। उन्होंने सोचा, "मां यहीं कहीं होगी। वीरा को उन्होंने नहीं देखा। वह खाना खाकर राक्षस के डर के मारे ऊपर एक पिंजरे में छिप जाती थी। सात भाइयों ने खाना खाया और सो गए। सुबह हुई और फिर शिकार को चल दिए। वीरा ने सात भाइयों, सात कुत्तों, सात बिल्लियों के लिए खाना बनाया। खुद खाना खाया और अपने पिंजरे में चल दी। शाम को सात भाई आये। उन्होंने खाना पका पाया। सब सोच में पड़ गए, यह खाना कौन बनाता है! तीसरे दिन बड़े भाई ने कहा, तुम शिकार को जाओ। मैं आज देख कर मानूंगा कि खाना कौन बनाता है। पर अचानक उसे नींद आ गई। वीरा रोज की तरह पिंजरे से उतरी। उसने खाना बनाया और अपने पिंजरे में चली गई। भाई शिकार से लौटे। उन्होंने बड़े भाई से पूछा, "खाना किसने बनाया ?" वह क्या कहता! बोला, "मैं सो गया था।"

तब छोटे भाई ने कहा, "आज मैं रहूंगा।" उसने अपनी उंगली काटी। उस पर मिर्च लगाई और लेट गया। पर उसे नींद कहां आनी थी! थोड़ी देर में उसने देखा कि पिंजरे से एक लड़की उतरी और खाना बनाने लगी। छोटा भाई उठा और उसने लड़की को पूछा, "तू कौन है ?" लड़की ने कहा, "मैं सात भाइयों की वीरा बहन हूं।" छोटे भाई ने कहा, "तो तू हमारी बहन है। मां कहां हैं ?" वीरा ने मां के मरने की खबर सुनाई। भाई-बहन रोने लगे।

शाम हुई। छः भाई लौटे। सारा भेद खुला। वीरा ने

भाइयों को खाना खिलाया। अब वे बड़े खुश रहने लगे। वे रोज बाहर शिकार के लिए चले जाते, वीरा उनके लिए खाना बना कर रखती। एक दिन शिकार को जाते हुए सात भाइयों ने वीरा से कहा, "आग संभाल कर रखा करना। यहां कोई बस्ती नहीं। सो तू चूल्हे में मांस न डालना।" वीरा ने "हां" कहते हुए सिर हिलाया, पर बाद में वह यही सोचती रही कि भाइयों ने ऐसा क्यों कहा। वह यह न समझी कि मांस चूल्हे में डालने से आग बुझ जायगी। उसने कच्चा मांस चूल्हे में डाल दिया और लकड़ियां नहीं लगाईं। होना क्या था? जो दो-चार अंगारे थे, वे बुझ गए। अभी सात भाइयों के लिए खाना बनाना था। वह सोचती, अब क्या करूं? वे भूखे आयंगे तो निराश होंगे। आग कहां से लाऊं? नजदीक कोई आबादी न थी। फिर उसने सोचा, शायद आसपास कोई रहता हो। उसने हाथ में चलनी ली और आग के लिए चल दी। चलते-चलते उसे कुछ दूर पर एक झोंपड़ी दिखाई दी। द्वार पर जाकर उसने आवाज दी, "है कोई अन्दर?" भीतर से एक लड़की निकली। वीरा को देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने बरसों से मनुष्य की सूरत नहीं देखी थी। वह बोली, "तू यहां क्यों आई है? क्यों, मौत बुला रही है? तुझे मेरा बाप राक्षस अभी खा जायगा।"

वीरा ने सोचा, जो हो, मुझे आग चाहिए। मेरे भाई आते होंगे, मुझे खाना बनाना है। तब राक्षस की बेटी ने उसके हाथ की चलनी पकड़ी और उसमें आग दे दी। चलनी में आग कम थी। राख ज्यादा थी। राक्षस की बेटी ने कहा, "इस राख को रास्ते भर गिराती जाना।" वीरा ने वैसा ही किया। रास्ते में राख गिरती गई और बाद में उसके पास अंगारे ही बच रहे। उसने उनसे आग जलाई, खाना तैयार किया और रोज की तरह पिंजरे में बैठ गई।

उधर राक्षस अपने घर आया। दरवाजे पर आते ही उसने अन्दर सांस ली और चिल्लाया, "यहां मुझे आदमी की गन्ध आती है।" उसने लाल-लाल आंखें करके कहा, "बोल, यहां किसको छिपा रखा है?" लड़की ने कहा, "यहां कौन आता! सब तो तुमने खा लिए हैं।" पर राक्षस नहीं माना। बोला, "मेरी नाक झूठी नहीं हो सकती। बता, नहीं तो तुझे ही खा जाऊंगा।" तब लड़की ने कहा, "एक लड़की आग के लिए आई थी। रास्ते में जहाँ-जहां राख मिले, वहाँ चलते जाना।"

राक्षस सांस लेने को भी न रुका। दौड़ता-भागता वीरा के घर पहुंचा। झोंपड़ी के द्वार बन्द थे। जाते ही राक्षस ने कहा "द्वार खोल, द्वार खोल।" तभी फूल के पौधे ने कहा, "वीरा, न खोल, न खोल।" राक्षस ने कहा, "वीरा, द्वार खोल।" फूल के पौधे ने फिर मना किया। राक्षस ने उसे नोचकर खा लिया और फिर बोला, "वीरा, द्वार खोल। तेरे सात भाई, सात कुत्ते, सात बिल्लियाँ आ गईं।" वीरा ने द्वार नहीं खोला, पर राक्षस उसे तोड़कर अन्दर घुस गया। वीरा ने सात भाइयों, सात कुत्तों और सात बिल्लियों के लिए खाना बना रखा था। राक्षस सब चट कर गया। वीरा उसे दिखाई न दी। जब पेट भर गया तो वह वहीं फर्श पर लेट गया।

वीरा पिंजरे से उसे देख रही थी। वह डर के मारे कांप रही थी। शरीर पसीने से भीग गया था। तभी एक बूंद पसीने की टपक कर राक्षस के मुंह में जा गिरी। राक्षस ने चौंक कर ऊपर को देखा और पिंजरे समेत वीरा को निगल गया। अब तो पेट और भी भर गया। राक्षस चल न सका।

शाम हुई। सात भाई, सात कुत्ते, सात बिल्लियां पहाड़ की चोटी पर आये। छोटे भाई ने कहा, "आज हमारी झोंपड़ी

सूनी दिखाई देती है।" सबने उसकी बात सुनी-अनसुनी की। घर पर आये तो देखा, फूल का पौधा द्वार पर उखड़ा पड़ा था और फर्श पर राक्षस लेटा था। सातों भाइयों ने अपने शस्त्र निकाले और राक्षस को मार दिया। उसका पेट फाड़कर उन्होंने वीरा को निकाला। वह जीवित बाहर आ गई। राक्षस को उन्होंने पूर्व दिशा में फेंक दिया और बहन से कहा, "आज से पूर्व दिशा की मोरी (खिड़की) पर बाल न संवारना।" वीरा ने उस समय तो 'हां' कह दिया, पर जब भाई शिकार को चल दिए तो वह सोचती रही, भाइयों ने ऐसा क्यों कहा है। वह उठी और वहीं जाकर बालों पर कंघी करने लगी। अकस्मात बाल काढ़ते हुए उसका कंघा हाथ से छूटकर नीचे गिर गया, जहाँ राक्षस का शरीर फेंका हुआ था। वीरा कंघे को लेने चली गई। वहां उसके पैर में काँटा चुभ गया। वह कराहती हुई वापस आई। थोड़ी देर में उसका पैर सूज गया और दुखने लगा। वीरा पीड़ा से रोने लगी।

शाम हुई। सात भाई, सात कुत्ते, सात बिल्लियां आई। पहाड़ की चोटी पर आकर छोटे भाई ने कहा, "आज हमारी झोंपड़ी सूनी-सूनी दिखाई देती है।" छः भाइयों ने सुना और कुछ नहीं कहा। घर आये तो उन्हें वीरा की कराह सुनाई दी। सात भाइयों ने उसका सूजा हुआ पैर देखा और कहा, "हमने पहले ही कह दिया था कि पूर्व की खिड़की पर कंघी न करना। तेरे पैर में राक्षस की हड्डी चुभ गई है।"

तब सात भाइयों ने सात कुत्तों और सात बिल्लयों को बुलाया। उन्होंने उसके पैर का सारा जहर चाट दिया। हड्डी का कांटा निकल गया और पैर की पीड़ा ठीक हो गई।

सात भाइयों के बीच वह अकेली बहन थी। भाइयों ने उसे कोई दुख न होने दिया। वे सब खाते-पीते और आनन्द से रहने लगे।O

सौदा न पटा

किसी गांव में एक पुराने सेठ रहते थे। वह एक बार कहीं बकरियों की खोज में निकले। किसीने बताया कि अमुक गाँव के अमुक आदमी के पास बकरियाँ हैं। वहीं वह चल दिए। जिसके पास वे बकरियाँ थीं, वह मामूली आदमी था। वह सेठ को नहीं पहचानता था। इसलिए उसने उनकी विशेष आवभगत नहीं की। उसने सोचा, यहाँ बहुत से व्यापारी आते हैं। होगा कोई ऐसा ही। इस लिए उसने उनसे तम्बाखू पीने की भी न पूछी। सेठजी को बहुत बुरा लगा, पर दूसरे के घर पर क्या कहते? उन्होंने बकरियां दिखाने को कहा। बकरियोंवाला उनको गोठ में ले गया। सेठ ने बकरियाँ देखीं और कहा, "तो कहो मोल।" बकरी वाले ने कहा, "मोल तो हो ही जायगा। लेकिन ध्यान रखना कि मैं उधार नहीं दूंगा।" सेठ को बुरा लगा। उन्होंने सोचा, यह आदमी मुझे क्या समझता है! उनके

हाथ में सोने की अंगूठी थी। वह बता देना चाहते थे कि वह सेठ हैं,पर मुंह से कहना उन्होंने ठीक न समझा। इसलिए उन्होंने उस उंगली से, जिसमें अंगूठी थी, संकेत किया,"इस बकरी का मोल बता।" बकरीवाले ने अंगूठी देख ली और जान गया कि ऐसा संकेत इसने मुझे अंगूठी दिखाने के लिए ही किया है। उसने मन-ही-मन कहा कि बड़ी शान दिखाता है अंगूठी की! उसके दाँतों पर सोने की फूली थी। उसने इस तरह कहने को मुंह खोला कि दांत दिखाई दें और कहा, "पच्चीस रुपया।"

सेठ समझ गए कि दांत की फूली दिखाना उनकी अंगूठी दिखाने का जवाब था। वहां पर एक दूसरा आदमी भी बैठा था। उसने सोचा, यह तो कोई अंगूठी दिखा रहा है, कोई फूली, मैं क्या इनसे कम हूं! उसके कानों में बालियां थीं। जैसे ही बकरी वाले ने बकरी की कीमत पच्चीस रुपया बताई, उसने सिर हिलाया, "नहीं, ज्यादा कह रहे हो।" और उसकी बालियाँ हिलती हुई दीखने लगीं।

बस, फिर बकरी का मोल कहाँ होना था! वे अपनी अपनी शान दिखाने लगे। उनका सौदा क्यों कर पटता! ०

वर्षा और इन्द्रधनुष

वसंत के पहले-पहले दिन थे। वनों में वृक्ष हरे-भरे पत्तों और लताएं फूलों से लद गई थीं। आम के बौर पर कोयल के मीठें बोल झरने लगे थे।

मंदाकिनी की हरी-भरी, फूलों से रंगी घाटी, वसंतोत्सव के लिए चुनी गई थी। तब हर वर्ष इसी तरह वसंत का उत्सव हुआ करता था। आसपास के किशोर और किशोरियाँ वहाँ

आ जुटते थे। किशोर खूब बन-ठन कर आते। किशोरियां भी अपने रंग-बिरंगे वस्त्रों में जैसे तितलियों का रंग भर लाती। असल में, यह उत्सव होता ही उनका था। वे मिलते,एक दूसरे से बातें करते और रिझाते। कभी उनकी अलग-अलग टोलियाँ बन जातीं और उनके पांव नृत्य की गति में ठुमक उठते और उनके कोमल कंठ गीतों के स्वर में पुलक उठते! गीतों में ही सवाल होते, गीतों में ही जवाब मिलते और फिर उनमें से कोई युग-युग के प्रेम-बंधन में बंध जाते—उनका विवाह हो जाता।

एक दिन की बात है। जब वसंतोत्सव हो रहा था तो उसमें एक किशोरी आई। वह सबसे सुन्दर थी—ऐसी,जैसी पहाड़ की चोटी पर चमकती तारिका, ऐसी, जैसी हिमालय पर पड़ी पहली किरण। उसके गोरे गालों पर घुंघराले बाल लटक रहे थे। उसकी वेणी वन-फूलों से सजी थी। ताल की मछली-सी, वर्षा-काल की बिजली सी वह सबसे अलग दिखाई देती थी। ऐसा खिला था वह रूप कि लगता था जैसे छूने से कजला हो जायगा।

जिधर वह जाती, ललचाई आंखें उसकी ओर उठतीं। जो भी उसे देखता, देखता ही रह जाता, जैसे किसी ने मंदिर की मूर्ति के आगे खड़ा कर दिया हो, और फिर वह ईश्वर से मनाता, "हे प्रभो, इस सुन्दरी के मन में मेरे लिए प्रेम जगे। यह मेरे ही बारे में सोचे।" लेकिन वह सुन्दरी थी कि सारी भीड़ में अकेली। सबको देखकर भी मानो वह किसी को नहीं देख रही थी। उसकी हिरनी-सी आंखें जैसे किसी और को ढूंढ़ रही थीं।

आखिर थोड़ी देर बाद एक सुन्दर सजे रथ पर बैठा राजकुमार वहां उतरा। उसके कंधों पर वस्त्र लटक रहा था। उसके हाथ में धनुष था। उसके ओठों पर मुस्कान और मुख

पर उगते सूरज का तेज था। किशोरी ने उसे देखा और उसकी आंखों में ख़ुशी छा गई। आंखें नीची करके उसने राजकुमार का स्वागत किया और फिर कुछ दूर जाकर दोनों वृक्षों की शीतल छांह् में बैठ गए।

राजकुमार ने कहा, "आज का दिन धन्य है। हमारा यह मिलन अमर रहे।"

किशोरी सुन्दरी जैसे धन्य हो गई। बोली, "प्रिय, जैसे द्यौ और पृथ्वी रहते हैं, वैसे ही हम एक होकर रहें। जैसे पेड़ लताओं को छाया देते हैं वैसे तुम्हारा प्यार मेरे ऊपर रहे।" किशोरी राजकुमार के चरणों में गिर पड़ी। राजकुमार ने पास की झूलती लता से एक फूल निकाला और उसके बालों में लगा दिया। किशोरी ने उसी फूल का पराग निकाला और उससे अपनी मांग भर ली।

उत्सव अभी ख़त्म नहीं हुआ था। राजकुमार ने किशोरी को रथ पर बिठाया और सारथी को चलने का संकेत किया। रथ आगे बढ़ा भी न था कि तभी भयंकर गर्जना करता हुआ एक दानव सामने आ खड़ा हुआ। उसने रथ रोक लिया। किशोरी कांप गई। राजकुमार गुस्से से लाल-पीला हो उठा। उसने तिरस्कार की दृष्टि से दानव को देखा और फिर रथ को चलाने का इशारा किया। लेकिन दानव गरजा, "कहाँ जाते हो ? मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगा। यह सुंदरी मेरी है।"

राजकुमार ने कहा, "नहीं, यह मेरी है। इसने मुझे वरा है।" यह सुनकर दानव बौखलाया। उसकी आंखों से जैसे आग बरसने लगी। राजकुमार और किशोरी को देखकर भी उसे जरा दया न आई। उसने तत्काल धनुष-बाण हाथ में लिया और राजकुमार पर एक बाण चलाया। बाण राजकुमार को

लगने ही वाला था कि किशोरी उसे बचाने के लिए सामने आ गई। बाण राजकुमार के बजाय किशोरी पर जा लगा। सहसा वह पीड़ा से छटपटा उठी। उसके मुंह से एक चीख निकली और वह रथ से नीचे गिर पड़ी। राजकुमार ने उसे देखा और फूट-फूट कर रो पड़ा। धरती उदास हो उठी। आकाश डोल उठा। देवताओं के राज्य में ऐसा अन्याय! आजतक कभी किसीने किसीको इस तरह नहीं मारा था। जिसने भी सुना, वही कांप उठा। लेकिन दानव का सामना करने का साहस किसमें था? आखिर धरती पर हुए इस पाप की सूचना इंद्र को मिली तो वह स्वयं आ उपस्थित हुए। इन्द्र ने धनुष खींचा और एक ही बाण से उस आततायी दानव को मार डाला। लोगों के दिल का भय कम हुआ। आकाश से फूलों की वर्षा हुई। धरती पर इन्द्र का जयजयकार गूंज उठा।

इन्द्र ने राजकुमार को सांत्वना दी। बोले, "वत्स, धैर्य धारण करो। तुम्हारा प्रेम इस मर्त्यलोक में अमर रहेगा!" राजकुमार फूट-फूट कर रो पड़ा। फिर सुन्दरी के पास गये। उसकी सोने जैसी चमकती देह अब मरी पड़ी थी। इन्द्र ने उसके ऊपर वरद हस्त रखा और कहा, "सुन्दरी, तुम भी अमर रहोगी। लो, मैं तुम्हें अपने धनुष की आभा देता हूं। जैसी तुम आज दीप्त हो, वैसे ही युग-युग तक रहोगी और तुम्हारे साथ ही लोग मेरे धनुष को भी याद करेंगे।"

कोई कहता है, किशोरी मर कर रंग-बिरंगे पंखोंवाली मोरनी बनी और राजकुमार जब मरा तो बादल बन गया। दादी मां कहती हैं—तभी से आसमान पर इन्द्रधनुष दिखाई देता है। वह किशोरी जब कभी उसे देखती है तो राजकुमार की याद में रो पड़ती है। उसके आंसू तब टपटप धरती पर गिर पड़ते हैं और लोग उसे वर्षा कहते हैं। O

पाप और पुण्य

पहाड़ी की चोटी पर कहीं एक गांव था। गांव में दो स्त्रियां थीं। स्त्रियां तो वहां और भी रही होंगी पर यह कथा दो ही स्त्रियों की है। स्त्रियां भी हर युग में रहती आई हैं; पर यह कथा सतयुग की है। कहते हैं, तब स्त्रियां सती-साध्वी होती थीं। उनके सत्त पर पृथ्वी टिकी थी, बादल ठीक समय पर बरसता था, बीमारी-महामारी नहीं आती थी और पाप पास नहीं फटकता था, फिर भी सतयुग में सब एक-से ही थोड़े रहे होंगे। पांचों अंगुलियां कब बराबर हुई हैं! सब फूल एक-सी सुगंध नहीं देते। सब सियारों पर सींग नहीं होते और सब मेंढ़कों पर चंदन नहीं होती! ऐसी ही वे दो स्त्रियां थीं। दोनों दो तरह की। एक पूर्व तो दूसरी पश्चिम।

एक बहुत ही सती-साध्वी और पूजा-पाठवाली पतिव्रता कहलाती थी। वह पति के सिवा कभी किसी पुरुष का मुंह देखना पाप समझती थी, मन में लाना तो दूर रहा। गांव में वह पवित्रों को भी पवित्र करने वाली थी।

दूसरी पूजा-पाठ पर हाथ नहीं लगाती थी। अपने पति को प्रेम करती थी, लेकिन किसी पुरुष का मुंह देखना पाप न समझती थी। वह सबसे हिलती-मिलती, और बोलती थी। उसका हृदय प्रेम का ख़जाना था। बड़ी दयालु थी और चुल-

खुले स्वभाव की। कोई बच्चा देखती तो उसका मुंह प्यार से चूम लेती, बूढ़ों का काम कर देती। रोतों के साथ घड़ी भर रो लेतीं, हँसतों के साथ खूब हंसती। कभी किसी से मिलने-बोलने में उसे हिचक न होती। सब उसकी तारीफ करते। किंतु इतना जरूर था कि उसके इसी खुले दिल के कारण लोग उसके चरित्र पर संदेह करते।

पहली को सब सती कहते। उसके लिए कभी किसी के मुंह पर ऐसी बात न आती।

संयोग की बात—दोनों में आपस में खूब गाढ़ी दोस्ती थी। कभी साथ-साथ उठती-बैठतीं और मौका पड़ता को साथ-साथ खेतों में काम करने भी चली जातीं।

शुरू अषाढ़ के दिन थे। एक दिन वे दोनों खेतों में काम करने नदी पार गईं। सांझ को लौट रही थीं कि अचानक बादल उमड़े। वर्षा हुई और नदी में बाढ़ आ गई। दोनों सोच में पड़ गईं कि अब क्या होगा। नदी पर कोई पुल न था और वैसे नदी पार करना जान जोखिम में डालना था। दोनों को कुछ सूझ नहीं रहा था।

सांझ का अंधेरा गहरा होता जा रहा था। सती साध्वी ने भगवान का नाम याद किया तो दूसरी हंसी। बोली, "हां दीदी, जरा अपना ज्ञान-ध्यान तो लड़ाकर देखो! तुम्हारा पूजा-पाठ कब काम आयेगा?"

पतिव्रता-सती साध्वी को उसकी बात बुरी लगी। पूजा-पाठ और इतने वर्षों की पतिव्रता-साधना पर उसका इस तरह का ताना कसना उसे अच्छा न लगा। वह चिढ़ उठी। बोली, "हंसती क्यों है? देख अभी नदी पार करके दिखाती हूं!

लेकिन देखना, तू अकेली छूट जायगी !"

यह कहकर उसने हाथ में नदी का पानी लिया। एक घड़ी याचना-भरी आँखों से आसमान की तरफ देखा और फिर आँखें मूंदते हुए कहा, "हे मेरे कुलदेवता, अगर मैंने पति के सिवा कभी किसी पर-पुरुष को न चाहा हो तो यह नदी घट जाय और मैं पार उतर जाऊं।"

सती का कहना था कि नदी दूध के उफान की तरह घट गई। स्त्री पानी में कूद गई। पानी सतह पर उतर आया। वह पार हो गई। दूसरे किनारे पर पहुंचकर उसने देखा, उसकी सखी अभी उसी पार खड़ी थी और नदी की धारा फिर पहले की तरह ऊपर चढ़ आई थी। वह गर्व से मुस्कराई और उसने उसे पुकारा, "अरी, आती क्यों नहीं ?" दूसरी ने सुना और खिसियाकर रह गई। वह क्या करे ? क्या वह भी नदी में कूद जाए ! बात डूबने या पार उतरने की नहीं थी पुण्य की और पाप की थी! वह सोच में पड़ गई। पूजा-पाठ वाली तो अपने पुन्य के प्रताप से पार हो चुकी है, लेकिन क्या उसने भी कोई पुण्य किया है ? "मैंने सिर्फ प्रेम किया है, उसने सोचा, "मैंने हर मनुष्य को प्यार की निगाह से देखा है। कहते हैं कि प्रेम भगवान का स्वरूप है। पाप तो मैंने भी नहीं किया।"

आखिर उसने भी शुरू का-सा साहस किया। हाथ में नदी का जल लिया और इष्टदेव का स्मरण कर बोली, "मैंने अगर मनुष्य-मात्र को प्यार किया हो तो भगवान मुझे भी पार उतारो।"

वह भी नदी में कूद पड़ी। नदी का पानी पहले की तरह उतर आया और देखते-ही-देखते वह भी नदी पार कर गई। उसने मन-ही-मन ईश्वर को मनाया और आकर अपनी सती-साध्वी सखी की बगल में खड़ी हो गई। दोनों ने खुशी-खुशी घर की राह ली। ०

हारिल की लकड़ी

एक गाँव में एक बड़ा-सा परिवार रहता था —पूरा सात भाइयों का। सात भाइयों की सात बहुएं थीं। और सातों की गोद में सात बच्चे थे। धरती खूब अन्न देती थी, राजा खूब धन देता था। किन्तु समय की बलिहारी! एक बार वहां सूखा पड़ा। धरती बिना पानी के हाहाकार करने लगी। धान के खेत बिना जुते रह गए। लोग भूखे और प्यासे मरने लगे। घोर अकाल पड़ा। व्याधियाँ फैलीं। माताओं की गोदें सूनी हुईं। स्त्रियों के माथे का सिन्दूर मिटा।

सातों भाइयों का परिवार कबतक इस संकट से बचा रहता। जो कुछ अनाज घर में था, सब खा चुके थे। एक दिन आया कि घर में अन्न का एक दाना भी न बच रहा। बच्चे भूख से तड़पने लगे। बहुएं दम तोड़ने लगीं। लेंकिन साईं का खेल देखिए कि बाकी सारा परिवार तो मर गया, सबसे छोटा भाई और उसकी बहू बच गए। ईश्वर की माया, कहीं धूप कहीं छाया! जिसको चाहे रखे, जिसको चाहे मारे। सात भाइयों

के भरे-पूरे परिवार में बस नाम लेने, और पानी देने के लिए वे ही बचे थे।

छोटा भाई और उसकी बहू, दोनों की जोड़ी जैसे भगवान ने मिलाई थी। दोनों में बड़ा प्यार था। बहू थी भी फूल-सी सुन्दर, पानी से पतली और हवा से हलकी। चाँदनी सी धुली और हरियाली-सी खिली। जब घर के अच्छे दिन थे तो वे साथ-साथ खेतों में काम करते, भेड़-बकरियाँ चराते और घास लकडी काटते। छोटी बहू तब कितनी खुश रहती थी! जिठानियां उसे छोटी कहकर कई काम करवा लेतीं और पति उसे इतना चाहता कि एक क्षण भी उससे अलग होना उसे अच्छा न लगता! लेकिन अब? भाग्य जो न करावे सो थोड़ा। अब न वह भरा-पूरा कुटुम्ब था, न वे हरे-भरे खेत ही कहीं दिखाई देते थे। न वहाँ रहना ही अच्छा लगता था, न छोड़ते ही बनता था। जंगल में जो कंद-मूल मिल जाते थे, उन्हीं पर गुजारा चलता था, पर वे भी कितने दिन तक चलते!

एक बार जब दिन भर भटकने के बाद वह घर लौटा तो उसकी स्त्री ने देखा, वह उदास बैठा है। स्त्री ने उदासी का कारण पूछा। पति ने कोई जवाब नहीं दिया। स्त्री ने कहा, "इसमें दुखी होने की क्या बात है! कुछ नहीं मिला तो क्या हुआ? हम पानी पीकर ऐसे ही सो जायगे।" लेकिन मर्द का दिल कैसे मानता? मर्द का दिल औरत के आगे न जाने क्यों छोटा हो जाता है! लेकिन उसी से वह उसके लिए बड़े-से-बड़ा जोखिम उठाने को तैयार हो जाता है। पति ने कहा, "अब यहाँ गुजारा होना मुश्किल है। मैं सोचता हूं, मुझे अब कहीं जाना होगा।"

स्त्री ने पूछा, "कहाँ जाओगे?"

पति बोला, "इन सात पहाड़ों के उस पार, सुनते हैं, कोई देश है। वहां अन्न और धन की कमी नहीं। मैं वहां जाऊंगा, कमाकर लाऊंगा।"

स्त्रो ने कहा, "मैं भो चलूंगी।"

पति ने मना किया, "तुम कहां चलोगी! और फिर मैं वहीं थोड़े रहूंगा! दो-चार रोज में कुछ लेकर लौट आऊंगा।"

पति ने उसे समझा-बुझा कर राजी कर लिया। फिर वह दूर जंगलों में गया और कुछ दिनों के लिए खाने-पीने का सामान बटोर कर ले आया। दूसरे दिन उसने उससे विदा माँगी। स्त्री ने दुखी होकर फिर कहा, "लेकिन मैं तुम्हारे बिना कैसे रहूंगी? मुझे तो यह गांव काट खाने को आता है। चारों तरफ सूना-ही सूना है। कहीं कोई चोर-बटमार आ जाय तो मैं किसे पुकारूंगी?"

पति ने ढाढ़स बंधाया। कहा, "हां सो तो है। मैं भी सोचता हूं, जगह अकेली है। पर कोई बात नहीं। मैं तुम्हें एक बड़ी-सी छड़ी दे देता हूं। इसको साथ रखना। यह तुम्हारी रक्षा करेगी। कोई परेशान करे तो सिर पर दे मारना।!"

स्त्री ने छड़ी ले ली और अपने पास रख ली। पति अनमना सा परदेश चला गया।

आज का दिन बीता। कल का दिन बोता। दिनों के बाद दिन बीतते चले गए। स्त्री पति की राह जोहतो रही। कई दिन निकल गए। पहाड़ की बाट पर वह लौटता न दिखाई दिया स्त्री उदास रहने लगी और फिर उसके लौटने की आस ही नहीं रही।

फिर एक दिन की बात है। रात हो चली थी। वह उदास लेटी थी। अंधेरा होते ही उसने घर के द्वार बन्द कर लिये

थे। उसके बाद आहट होती तो वह काँप उठती। न जाने कब कौन आ जाय और उसे मार डाले। लेकिन आहट ही होती, कभी कोई आता न था। उस दिन सचमुच कोई आया था। उसने द्वार खटखटाया। स्त्री ने द्वार नहीं खोले। वह बुरी तरह डर गई। मैं दरवाजा हर्गिज नहीं खोलूंगी। कोई मुसाफिर होगा। रात काटने के लिए जगह मांगेगा। नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है! मैं दरवाजा नहीं खोलूंगी। मुसाफिर जोर-जोर से दरवाजा खटखटा रहा था। स्त्री डर के मारे मरी जा रही थी। तभी उसे अपने पति की कही बात याद आई। उसने उसकी दी हुई छड़ी निकाली और मुट्ठी में कस कर पकड़ ली। दरवाजा न खुला तो मुसाफिर ने जोर का धक्का मारा और दरवाजा तोड़ डाला। स्त्री अपने को बचाने के लिए नागिन-सी फुफकार उठी। सहसा उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। उसने आव देखा न ताव, उसके सिर पर छडी दे मारी। मुसाफिर एक ही चोट में नीचे गिर पड़ा। उसके सिर से लहू की धारा बह चली और वह अचेत हो गया।

स्त्री ने देखा तो जैसे उसे पाला मार गया। वह मुसाफिर उसी का पति था। अपनी भूल पर उसके हाथ-पांव फूल गए। हा, यह मैंने क्या किया, वह फूट-फूट कर रोती हुई पति के चरणों में लोट गई। लेकिन उसके प्राण-पखेरू कभी के उड चुके थे। स्त्री बेचारी छटपटा उठी और आखिर उसके भी प्राण निकल गए। कहते हैं, उसके प्राण एक चिड़िया में जा पड़े। उस चिड़िया को 'हारिल' कहते हैं।

हारिल जहाँ भी दिखाई देती है, उसके पंजे में लकड़ी रहती है। कहते हैं, वह अपने पति को दी हुई छड़ी कभी भूलती नहीं।
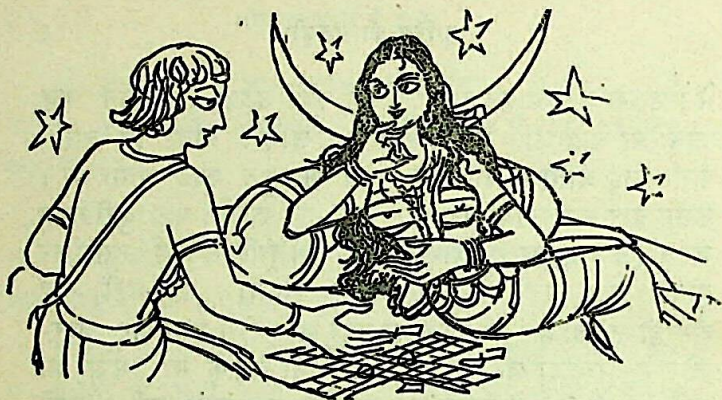
चुगता चकोर अंगारे

सूरज की एक बेटी थी। तन की उजली, गात की रुपहली। उसे चांद कहते थे। चांद बचपन से ही अपने बाप के पास नहीं रहती थी। ज्योतिषियों ने पहले ही कह दिया था कि पिता और पुत्री अलग-अलग रहेंगे। कभी साथ रहे तो पृथ्वी पर बहुत बड़ा अनिष्ट होगा। इसलिए सूरज ने चांद के लिए पहाड़ की एक दूसरी चोटी पर 'मरूड़ी' (कुटी) बना दी थी। उस जगह को लोग 'चांदकोट' (चंद्रलोक) कहते थे। चांद चांद-कोट में अकेली रहती थी। अपनी रक्षा के लिए उसने दो बड़ी-बड़ी सींगोंवाली भैंसें रखी हुई थीं। चांद घास काटती, दूध पीती और आराम से पड़ी रहती।

एक दिन मर्त्यलोक का कोई राजकुमार न जाने कहां-कहां भटकता हुआ सूरज के पास पहुंचा। सूरज ने उसे देखा तो पूछा, "यहां क्यों आये हो ? क्या चाहते हो ?"

राजकुमार ने कहा, "कुछ नहीं। यहाँ रहना चाहता हूं। मेरा इस संसार में कोई नहीं। कुछ काम मिल जाय तो यहीं

पड़ा रहूंगा।"

सूरज को राजकुमार पर दया आ गई। उसके कपड़े फटे हुए थे। उसके पैरों में बिवाइयां पड़ी थीं और उसका चेहरा भूख-प्यास से कुम्हलाया हुआ था। सूरज ने उसे दीन, हीन बालक समझ कर अपने पास रख लिया और कहा, "अच्छा, तुम चांदकोट चले जाओ। वहां मेरी बेटी चाँद रहती है।"

राजकुमार ने पूछा, "वहां मुझे क्या करना होगा।"

सूरज ने कहा, "तुम्हें उसकी भैंसों के लिए घास काटना होगा।"

राजकुमार ने 'अच्छा' कहा और खुशी-खुशी 'चाँदकोट' को चल दिया।

चाँदकोट में कोई आदमी नहीं था। चाँद ने उसे आते देखा तो आने नहीं दिया, "अरे, लौट जा। यहाँ मनुष्य के नाम पर मक्खी तक नहीं दिखाई देती।" पर राजकुमार नहीं रुका तो चाँद को गुस्सा हो आया। उसने अपनी दोनों भैंसें खोल दीं। राजकुमार ने दोनों के सींग पकड़े और उन्हें वश में कर लिया। चाँद ने उसकी वीरता को देखा तो शांत हो गई। आने का कारण पूछा। राजकुमार ने कहा, "मैं आफत का मारा हूं। सूरज देवता ने मुझपर कृपा की और तुम्हारी भैंसें के लिए घास काटने यहाँ भेज दिया।" चाँद ने कहा, "ठीक है, लेकिन तुझे मुझसे दूर रहना हागा। मैं किसी मर्द की छाया तक देखना पसन्द नहीं करती।"राजकुमार ने उसकी बात स्वीकार की और अपने काम पर लग गया।

इस तरह कई दिन बीत गए। राजकुमार कभी चाँद के पास न जाता, पर चाँद उसे देखती रहती। अब उसे वह बुरा न लगता। उसकी छाया का डर भी धीरे-धीरे उसके मन से

चला गया। उसे देखकर न जाने चाँद कभी कभी उदास क्यों हो जाती ! एक दिन वह योंही उदास बैठी थी कि वह उसे दूर से आता दिखाई दिया। उसने उसे पास बुलाया और बोली "घसियारे लड़के, क्या घास काटना ही जानते हो ? या कुछ और भी आता है ?" लड़के ने कुछ नहीं कहा। चाँद ने पास बिठा लिया। हाथी-दाँत के पाँसे निकाले और दोनों खेलने लग गए। फिर क्या था, खेल-ही-खेल में घसियारा घास काटना भूल गया। अब रोज वे पांसे खेलते। दोनों फूलों की तरह हंसते, पंछियों की तरह बोलते और उनके प्राणों में प्रीत समा गई।

लोगों ने देखा तो सूरज से शिकायत करदी। लोग चांद की बातें करने लगे, कलंक लगाने लगें। उसकी सगाई बादल से पहले ही तय हो चुकी थी। जब यह बात फैली तो सूरज ने जल्दी ही बेटी का ब्याह करने की ठान ली। चांद ने सुना तो बहुत रोई। बादल उसे बिल्कुल पसंद नहीं था, पर उसका बाप बिल्कुल नहीं माना। आखिर बादल एक दिन अपनी बरात लेकर पहुंचा। सूरज ने बरात की आवभगत की। लेकिन फेरों का समय आया तो देखते क्या हैं, चांद घर में नहीं है ! सारा घर छान मारा, पर कहीं उसका पता न चला। घसियारे से पूछा तो उसने भी कुछ नहीं बताया।

सूरज ने चारों दिशाओं में उसे खोजने के लिए अपने आदमी भेजे। आखिर चांद मिली। पहाड़ की चोटी पर सबसे ऊंचे पेड़ पर उसने गले में रस्सी बांधकर फांसी लगा ली थी। वहीं उसकी लाश पेड़ से झूल रही थी। वैसी ही सुन्दर, वैसी ही उज्ज्वल। राजकुमार पागल हो उठा। झपट कर उसने चांद को [गोद में उठा लिया, लेकिन सूरज के सेवकों ने चांद को उससे छीन लिया। राजकुमार उनके पीछे-पीछे चल पड़ा।

सूरज ने चांद की चंदन की चिता बनाई और उसका दाह-कर्म कर दिया। सबके देखते-देखते राजकुमार भी उसी चिता में कूद पड़ा। वह भी मर गया। मरकर वह चकोर बन गया। कहते हैं, वही चकोर आज भी अंगारों में अपनी प्रेयसी चांद को खोजता है और बादल बार-बार उसके और उसके पिता सूरज के सामने आ खड़ा होता है। ०

माटी नये रूप धरे

एक था ब्राह्मण। एक थी ब्राह्मणी। दोनों के बच्चे भी थे, पर थे अभी छोटे, चकोरों की टोली जैसे प्यारे। ब्राह्मण यजमानी करता था। दिनभर घूम-फिर कर जो कुछ लाता, ब्राह्मणी पका लेती। सब खाते-पीते और खुश रहते। इसी तरह सुख से उनके दिन बीतते जा रहे थे।

समय की बात कहिए या भाग्य का लेखा समझिए, एक दिन ब्राह्मणी बीमार पड़ गई। दिन के बाद महीने बीत गए, पर

वह ठीक नहीं हुई। ब्राह्मण ने जी-जान से दवा-दारू की, पर उसकी हालत में कोई सुधार न हुआ। फिर तो वह समय आया जबकि उसके जीने की भी आस न रही।

जहां ब्राह्मणी बीमार पड़ी थी, वहीं गौरैया का जोड़ा रहता था। उन्होंने छत में घोंसला बना रखा था और उसमें बच्चे दिये थे। एक दिन अचानक ब्राह्मणी की निगाह उन पर पड़ी। उसने देखा कि छोटे-छोटे बच्चे चीख रहे हैं और मादा गौरैया उनके चोंच मारे जा रही है। ब्राह्मणी से यह देखा न गया। उसकी आंखों में आंसू आ गए।

ब्राह्मण ने उसकी आंखों में आंसू देखे तो पूछा, "क्यों, क्या हुआ ? तुम रो क्यों रही हो ?"

ब्राह्मणी ने आंसू पौंछे और घोंसले की तरफ इशारा किया। बच्चे अभी भी जोर-जोर से चिल्ला रहे थे। ब्राह्मणी ने कहा, "उस मादा गौरैया को देख रहे हो। वह चुड़ैल उन बच्चों को मारती जा रही है। यह इनकी मां नहीं मालूम होती। मां होती तो अपने बच्चों को क्यों मारती ? इनकी मां मर गई होगी। फिर नर दूसरी को ले आया होगा।"

ब्राह्मण बोला, "तो क्या हुआ ? इसमें रोने की क्या बात है ?"

ब्राह्मणी बोली, "दुनिया की रीति देखकर मुझे रोना आता है। मैं मर जाऊंगी तो तुम भी दूसरा ब्याह कर लागे और जो आयेगी वह भी मेरे बच्चों को इसी तरह सतावेगी।"

ब्राह्मणी की यह बात ब्राह्मण के दिल में चुभ गई। उसने ब्राह्मणी को दिलासा दिलाया, "तुम ऐसी बात कभी मत सोचना। मैं ब्याह नहीं करूगा। और भगवान चाहेगा तो तुम

जल्दी ही ठीक हो जाओगी।"

कुछ दिन बाद ब्राह्मणी मर गई। मरने से पहले ब्राह्मण ने उसके सामने ब्याह न करने की बात दुहराई। ब्राह्मणी ने संतोष से आखिरी सांस ली।

कुछ समय तक ब्राह्मण बहुत दुखी रहा। उसे अपना वादा याद रहा। लेकिन कुछ दिन बाद उसे सारा घर सूनासूना-सा लगने लगा। वह लाचार हो गया और एक दिन उसने ब्याह कर लिया। ब्राह्मण की जिन्दगी में खुशी लौट आई। लेकिन मरते समय ब्राह्मणी ने जो बात कही थी, वह सच निकली। नई पत्नी उन बच्चों को फूटी आंख भी नहीं देख सकती थी। वह न उन्हें खाना-पीना देती थी, और न उन्हें प्यार करती थी। कभी वे हठ करते तो उन्हें और भी हैरान करती। सब छोटे थे। अबोध थे। रोते और चुप हो जाते। पर लड़की बड़ी थी। उसका नाम था भूमा। वह सौतेली मां के बर्ताव को समझती थी। इसलिए बच्चों में सबसे ज्यादा दुखी वही रहती थी। अपने छोटे भाइयों की देखभाल करती थी। धीरे-धीरे उस ब्राह्मणी के मन का मैल बढ़ता गया और एक दिन उसने ब्राह्मण से चुगली कर दी। बोली, "या तो भूमा का ब्याह कर दो, या मैं इस घर से कहीं चली जाऊंगी।"

ब्राह्मण ने सोचा 'ठीक है, ब्याह कर दूंगा। बेटी का अलग घर बस जायगा। यहां के रोज-रोज के झगड़े से छुटकारा मिलेगा और वह नये घर जायगी तो वहाँ खुश तो रहेगी। अपने घर रहेगी तो अच्छा खायेगी, अच्छा पहनेगी।" उसने इधर-उधर निगाह दौड़ाई, पर कोई लड़का ध्यान में नहीं आया।

उधर ब्राह्मणी उससे पीछा छुड़ाने पर तुली थी। बोली, 'वर की क्या है, कल दरवाजे पर जो पहला आदमी दिखाई

दे, भूमा का हाथ उसी को पकड़ा दो।"

ब्राह्मण एकदम 'हाँ' तो नहीं कर सका, पर 'ना' कहने की हिम्मत भी उसमें नहीं थी। कहावत है, "मर्द पहली औरत का तो मालिक होता है, लेकिन दूसरी का गुलाम हो जाता है।" ब्राह्मण नई औरत की मुट्ठी में था। आखिर क्या करता! स्त्री की बात उसे माननी पड़ी।

वह दिन बीता। अगला दिन आया। सुबह हुई, पर वह सुबह भूमा की जिन्दगी की सुबह न थी। कहते हैं, जो भाग्य राज न भोगने दे, वह भीख क्यों मांगने देगा। भाग्य ने मां ही छीन ली थी, तब मनचाहा वर कैसे मिल जाता? सुबह जो आदमी दरवाजे पर आया, वह एक भिखारी था। जो होना था, होकर रहा। भूमा भिखारी के साथ चली गई। उसके छोटे भाई रोते-कलपते रहे। वह भी रोती रही।

भिखारी भूमा को लेकर नगर में चला आया। नगर के बाहर एक टूटी झोंपड़ी थी। वहीं वे रहने लगे। भिखारी रोज भीख मांगकर लाता और भूमा पकाकर खिलाती। इसी तरह दिन कटने लगे, पर भूमा दुखी न थी। विधना ने उसके भाग्य में जो लिख दिया था, वह उसे मंजूर था।

कहते हैं, मुसीबत अकेली नहीं आती। संयोग की बात, एक दिन भिखारी बीमार पड़ गया। अब भीख का रास्ता भी न रहा। भूमा क्या करती? कहां जाती? उसका कोई अपना न था, न नीचे की धरती, न ऊपर का आसमान। उसका साथ आदमी भले ही न दे, पर पानी, हवा और आग तो देते थे। वे उसके पास आते थे और उसकी कुशल पूछ जाते थे, पर इससे उनका पेट थोड़े ही भर जाता था?

एक दिन भूमा सोच में बैठो थी। इतने में आग, हवा और पानी आये। आग बहुत देर तक चूल्हे के पास बैठी उसका मन बहलाती रही। हवा उसके बीमार पति के सिरहाने बैठी उसका सिर सहलाती रही। उनकी सहानुभूति से भूमा का दिल उमड़ आया। वह रो पड़ी। बोली "अब मैं क्या करूं ?" आग बोली, "बहन मैं क्या करूं ? दुनिया के लोग बड़े मतलबी हैं। अपने काम के लिए मुझे याद करते हैं, फिर पास नहीं फटकने देते। ऐसा न होता तो मैं ही किसी के पास चली जाती और कहीं से कुछ लाकर तुम्हें दे देतो।"

पानी बोला "ऐसी बात न कहो आग बहन ! तुम कहाँ नहीं जातीं ? घर-घर तुम्हारा देखा है। कहीं से कुछ मांग कर ले आओ, नहीं तो यह मर जायगी।"

आग बोलीं, "नहीं, पानी भैया, यह काम तो हवा बहन ही कर सकती है।"

हवा बोली, "भूमा बहन,तू जी छोटा क्यों करती है ? मैं जाती हूं और तेरे लिए कुछ-न-कुछ लेकर आऊंगी।"

पानी और आग अपने अपने घर चल दिये। हवा तीर की तरह बाहर निकली। रास्ते में एक धनी की हवेलो पड़ती थी। हवा वहां पहुंचो। उसें देखते ही धनी उठ खड़ा हुआ। बोला ?, "हवा, तुम कैसे आई हो ?"

हवा बोली, "आप धनी हैं। आपकी हवेली से कुछ दूर ही एक झोंपड़ी में एक भिखारी बीमार पड़ा है। उसे खाना चाहिए।"

धनी ने सुना और पीठ फेर ली। धम्म से दरवाजे बन्द किये और हवा को बाहर निकाल दिया। बेचारी हवा बड़ी दुखी हुई और दूसरे घर की खोज में चल पड़ी।

हवा को देर हो गई, पर वह लौटी नहीं। भिखारी तड़प रहा था। भूमा ने सोचा—'हवा नहीं आई। क्या भरोसा उसका। जहां गई होगी, वहीं रम गई होगी। वह क्यों न जंगल में जावे और वहां से कंद-मूल-फल चुन लावे। इतना साचकर भूमा उठी और जंगल की ओर चल दी।

हवा जगह-जगह भटकती फिरी। कहीं कुछ न मिला। आखिर वह निराश होकर लौटने ही वाली थी कि एक गरीब की झोंपड़ी का दरवाजा उसे खुला मिला। वह अंदर गई। एक स्त्री रोटी सेंक रही थी। हवा ने उसे अपनी बात कह सुनाई। स्त्री को दया आई और उसने हवा को रोटी दे दी। हवा ने उसे आशीर्वाद दिया और रोटी को लेकर उड़ी। बड़ी तेजी से भूमा की झोंपड़ी में पहुंची। बाहर से उसने भूमा को आवाज दी, पर अन्दर से कोई नहीं बोला। हवा अंदर घुसी तो देखती क्या है कि भूमा वहाँ नहीं है और भिखारी मरा पड़ा है।

हवा रोटी वहीं छोड़ उलटे पैरों वापस आई और भूमा की खोज में निकली। वह इधर-से-उधर दौड़ी, पर भूमा कहीं दिखाई न दी। उसने लोगों से पूछा, पर किसी को कुछ पता न था। हवा जंगल की ओर मुड़ी वहाँ उसे एक पेड़ दिखाई दिया। उस पर काफल[1] के लाल-लाल छोटे-छोटे फल पके थे। हवा ने देखा, भूमा काफल के पेड़ पर चड़ी काफ़ल बीन रही थी। हवा ने पास जाकर कहा, "अरी ओ भूमा, तू यहाँ है?"

भूमा ने सुना तो वह सहम गई।

हवा ने फिर कहा, "अरे तू यहाँ है। तेरा पति 'घर पर मरा पड़ा है। तू काफल किसके लिए बीन रही है?"

---

१. एक पहाड़ी फल, जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रथों में मिलता है।

भूमा ने सुना तो सुन्न रह गई। उसके शरीर को जैसे लकवा मार गया। उसके पैर काँपे, हाथ डाली से छूट गए और वह धड़ाम-से नीचे आ गिरी। हवा भागी हुई उसके पास पहुंची, पर वह क्या करती ? भूमा की आँखें सदा के लिए मुंद गई थीं।

आग ने उन दोनों को दाग दिया। पानी ने उन्हें बहा दिया। लोग कहते हैं, आदमी मरता है। सच यह है कि वह मरता कहाँ है ? वह तो माटी नित नये रूप धरती है। वह दोनों मरे तो उनके प्राण पक्षियों में जा पड़े।

आज भी वैशाख-जेठ में जब काफल पक कर लाल हो जाते हैं तो एक चिड़िया कहती सुनाई देती है—"काफल पाकू !"[2]

फिर एक और आवाज दुहराती है—"मैन नी चाखू।"[3]

सुनकर लोग कहा करते है—"काफल पाकू" पक्षी का जोड़ा आ गया। अब काफल पक गए हैं।

---

२. काफल पक गये हैं।

३. पर मैंने तो नहीं चक्खे।

बांसुली का सुर

गढ़वाली

कै गौं मा एक नौनो रन्दो छौ। वो बच्चापन मा हो छोरेइ गै छौ। चाची-चाची दगड़ रंदो छौ। वो वै सणी सबेर होन्द ही भेरा-बखरौं दगड़े वण ढेमी देन्द छा, आर ब्याखुनी दाँ खबर लेंद छा कि घर बौड़ीक भी आये कि ना। वेको क्वी अपणो नी छौ। क्वी वे तैं पिरेम नी करदो छौ। वो इनो माणदो छौ जनु कि वो इरनी बड़ी दुन्यामा यखुली ही होवो। वह फूलूतैं हैसदो देखद छौ, पंछियों तैं वासद सुणद छौ, पर मनखी नामान क्वी वै दगडे हैंसीक नी बोल्द छौ। यौंन ही बालापन बिटे ही वे को जिकुड़ी पर बबराट बैठी गये छौ।

बांसुरी का स्वर

किसी गांव में एक लड़का रहता था। वह बचपन में ही अनाथ हो गया था। चाचा-चाची के साथ रहता था। वे उसे सुबह होते ही भेड़-बकरियों के साथ जंगल में भेज देते थे और शाम को खबर लेते थे कि लौटा कि नहीं। उसका कोई अपना न था। कोई उसे प्यार न करता था। उसे लगता था, वह दुनिया में अकेला है। वह फूलों को हंसता देखता था, पंछियों को बोलते सुनता था, पर कोई भी आदमी उससे हंसकर न बोलता था। इसलिए बचपन से ही उसके दिल में कसक बैठ गई। वह सुनसान वनों में गीत गाता कभी बाँसुरी बजाता। जब

वो सुनकर वण मा गीत लगोन्द छौ, कभी बाँसुली बजौन्द छौ। जब वो गाँद छौं त पिर्थी आर आगास बिजी जान्द छौं। मिर्ग चरणू छोड़ी देन्द छा और पंछी वासणू। चलदो बटोई भी एक घड़ी रुकी जान्द छौ। जु लौक वैं जाणदा छा वो वै देख णक खदेन्द छा। जु वै सणी देखणक खुदेन्द छा। जु वै सणा देख चुकी छा वो वै छनी बौल्या बौल्द छा। उनू वै को नौं वैजू छौ पर या बात भौत कम लोक जाणदा छा।

डाँडा का एका तर्प बैजू को गौं छौ आर हैंकी तर्प क्वी हैंको गौं छो। वें गौं मा एक नौनी रन्दी छै। वींकों बाबू खेती कर्द छौ आर भैंसी पाल्द छौ। बाबू भैंस्यों तैं चरोंद छौ और नौनी घर को काम कर्दी छै। नौनी सजगरी छै। सट्यौं की कबलान्दी बौटली की तरौं वींभाँ ज्वानी सबराण लैगे छै। बाबा की एकुली एकून्त छै। बई पैले ही मरिगे छै। यान बुबा की लड्यून्त छै। वो वीं तैं छेणी बोल्द छौ।

छेणी रोज बैजू का गीत सुणदी छै। वैकी बांसुली वींका कन्दूड़ मा रुणान्दी छै। कबी वा गाड का छाला पर पाणी भन्न औन्दी छै त खुटा धोण का बाना दुंगा मा बैठी जान्दी छै आर वैकीं बांसुली सुण्ण लग जान्दी छै। वीं इनु लग्द छौ जनु क्वी कैं बिसरीं बात समलौणू हो। वींको ज्यू खुदेण सीं लगदो आर वा इखारे इखारे वै बाँसुल्या का बाबत सोचण लगी जान्दी छै। यनी त वैकी बांसुली छ, अफु कनो होलो भग्यान? क्वी वा साँसा भरदी छै। हिराँ, क्या कभी वे छनी देखो भी पौलू?

दिन चल्दा गैन। रोज गीत सुणेन्दा छा, रोज बांसुली बजदी छै आर ऊं छेणी रोज सुणदी रंदी छै। मृन मा वा कनी कनी गांणी कर्दी जान्दी छै आर मन्सूबा ठाणदी रन्दी छै। जना जना दिन जान्दा रैन, वा सोचदी जनु कि बांसुली वीं गैं

वह गाता था तो धरती और आकाश जाग उठते थे। हिरन घास चरना छोड़ देते थे और पंछी गाना भूल जाते थे। चलता बटोही भी क्षण भर को रुक जाता था। जो लोग उसे नहीं जानते थे, उसे देखने को तड़पते थे। जो उसे देख पाते थे, वे उसे बावला कहते थे। वैसे उसका नाम बैजू था, यह बहुत कम लोग जानते थे।

पहाड़ के एक ओर बैजू का गांव था, दूसरी ओर एक दूसरा गांव था। उस गांव में एक लड़की रहत थी। उसका बाप खेती करता था। उसने कई भैंसें पाल रखी थीं। बाप भैंसों को चराता था और बेटी घर का काम करती थी। लड़की बड़ी हुई। धान के बढ़ते पौधों की तरह उसमें जवानी लहराने लगी। पिता की वह इकलौती बेटी थी। मां पहले मर चुकी थी। इसलिए पिता को वह बहुत प्यारी थी। वह उसे 'छेणी' कहकर पुकारता था।

छेणी रोज बैजू के गीत सुनती थी। उसकी बांसुरी की आवाज उसके कानों में गूंजती थी। कभी वह नदी के किनारे पर पानी भरने आई होती तो पैरों को धोने के बहाने किसी चट्टान पर बैठ जाती और उसकी बांसुरी सुनती रहती। उसे लगता, जैसे वह कोई भूली हुई बात याद दिला रहा हो। उसके प्राण उड़ने लगते और वह बार-बार उसी बांसुरीवाले के विषय में सोचने लगती, 'ऐसी जिसकी बाँसुरी है, वह खुद कैसा होगा!' कभी वह गहरी सासें भरती, 'हे राम, क्या मैं कभी उसे देख भी पाऊंगी?'

दिन बीतते गये। रोज बांसुरी बजती, रोज गीत सुनाई देते। छेणी रोज सुनती, मन-ही-मन गुनती और भांति-भांति के मनसूबे बांधती। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, वह अनुभव करने

लगौणी हो। अब वा उदा सरण लैगे। बुबान नौनी तैं भ्रम-राड़ीं देखे। एका दिन वैन वीं तैं अफू मू बुलाये आर पूछे : नौनी, आजकाल तू उदास वेक रन्दी ? जेणीन बोन्न छौ। वीं अफी पता नी छौ कि वा तनी केको रन्दी। बुबान फेरी पूछे पर नौनीन टाल दिने। बुबा नाराज होये : तिन आज तैं मैं मू क्वीं बात नी छिपै, नौनीन फेर भी कुछ नी-बतै।

परायो दिल बल परदेश। बुबा छनी नौनी की बात मालम नी होई। नौनीन आपणों दिल परगास नी करे। एका दिन रोज की तरों फेर वा बांसुली बजे। छेणी जनी कि बौली होई गये। वीं से नी रणेंये। वींन दाथड़ों उठाये। बुबा मा बोले कि मैं घासक जान्दू अर वै डांडा चली गै जख बांसुली बजणी छै बैंजून छेणी औंदी देख्याले : नौण की तरौं गोरी केला की तरौं गलखी आर पालिगा की डाली की तरों कोंग्ली। वींकी आग जनी आंखी छै अर बुराँस जनी गल्वाडी छै। बैजू वै रूप पर मोइत होई गये।

छेणी वैकी काख पर ऐक खड़ी होई गये। दुयों की आँखी मिलीन। छेणी डाला का पिछाड़े होई गाये। बैजून पूछे : तू कु नौनी। छेणीन बोले : मैं वेल्या गौं रन्दों; रोज तुम्हारी बांसुली सुणदी रन्दोंऊं।

तै दिन बिटीन बैजू की बांसुली मा वैका दिल की खुशी भी मिली गये। अब वो बाँसुली बजौन्दों आर खुश रन्दो छौ। छेणी सणी वै सणी मिलण को कम मोका दिलदो छौ। यान वा कुमजुल्या रन्दी छै। बुबान देखे कि नौनी दिन-बदिन झुरेणी छ त एका दिन वैन फेर पूछे : नौनी त्वै क्या होये ? नौनीन पैले त बात टाल दिने पर फेर जब बुबान जोर करे त वींन बोले : तै डाँडा मा क्वी बांसुली बजौंद। मैं वें वग्त इनो लग्द जनु क्वी क्वी मेरा पराण हरीक लिजाणू छ।

लगी की गीत उसे पुकार रहे हैं, बांसुरी उसे बुला रही है। वह उदास रहने लगी। पिता ने बेटी को मुरझाते देखा। एक दिन उसने उसे पास बुलाया। पूछा, "आजकल तू उदास क्यों रहती है, बेटी ?" वह क्या कहती ! वह खुद नहीं जानती थी कि वैसी क्यों रहती है। बेटी ने बात टाल दी। पिता ने कहा, "तूने आजतक मुझसे कोई बात नहीं छिपाई, बेटी।" बेटी फिर भी कुछ नहीं बोली।

पराया दिल परदेश होता है। पिता को बेटी के दिल की बात नहीं मालूम हुई। बेटी भी अपने भेद को छिपाये रही। एक दिन रोज की तरह बांसुरी बजी। छेणी जैसे बावली हो उठी, उससे न रहा गया। उसने दरांती उठाई, पिता से कहा कि मैं घास के लिए जा रही हूं और दौड़ती-हांफती पहाड़ पर चली गई, जहां बैजू बांसुरी बजा रहा था। बैजू ने नन्दा को आते देखा। वह माखन-सी गोरी, केले की तरह मीठी और पालक की डाली की तरह नाजुक थी। उसकी आंखों में आग थी और गालों में बुरांस फूले थे। बैजू उस रूप पर मुग्ध हो गया।

छेणी उसके पास आकर खड़ी हो गई। दोनों की आँखें मिलीं। छेणी पेड़ की ओट में हो गई। बैजू ने पूछा, "तुम कौन हो ? छेणी ने कहा, "मैं नीचे वाले गाँव में रहती हूं। रोज तुम्हारी बाँसुरी सुनती रही हूं।"

उस दिन से बैजू की बाँसुरी में उसके दिल की खुशी भी मिल गई। अब वह बांसुरी बजाता और खुश रहता। नन्दा को उससे मिलने का मौका कम मिलता था। वह दुःखी रहने लगी। पिता ने उसे दिनोंदिन दुबली होते देखा और एक दिन फिर पूछा, "तुझे क्या हो गया, बेटी।" बेटी ने पहले बात टाल दी। पर बाप ने जब जोर दिया तो उसने कहा, "पहाड़ की

बाबून न इथैं देखे न उथैं, सीदो डांडा चली गयें। वख बैंजू बांसुली माँ अफू तैं विसर्‌यों छौ। छेणी का बुबान जान्दी जैक वैकी बाँसुली लूछी दिने। बैजू विचारो हक्काण्यू सी रैंगे। छेणी का बुबान तव बोले : तू बांसुली किलैं वजौन्दी बे छोरा? बैंजून बोलें : बजौन्द छौं त क्या होये। तुम बुरो किलै लगद? यख वण मा कैका बुबा को राज छ, जु मैकना कर देऊ। छेणी को बुबा तब कुछ भमकी गै। वैन तब मुलेमी से सारी बारदात सुणायैं आर आखिर दौं बोले : तू बाँसुली न बजाया कर। जु त्वे छनी चैंद मै से माँगी ले पर...। मैं मू इथा भैंसा छन, इती पूंगड़ा छन...। बैजू हैंसण लै गये छेणी का बुबान भारी अणखू माणे। वैन बोले : माँगी ले। मैं झूट नी छौ बोन्या। बैजून बोले : ज्वा चीज मैं माँगलू वा तुम दीइ नि छा सकण्या। छेणी का बुबान तब कसम खैन। बैजू तैं तब क्या चैंद छौ। वैन बोले : त देंद ही छा त मैं छनी छेणी चैंदी। छेणी को बाबू हक्क रैंगे। हैं मूरख यो क्या मांगी त्वेन! जरा सोचो त होन्दू? कख राजा भोज कख बल बांदर चोर। बैजून बोले : रण द्या। क्वी बात नी। कंडाली लगै कतैं दान होयो कि होयो?

वीं रात छेणी का बुबा तैं निन्द नी आई। वेका मन मा कै दंदोल चल्दा रैन। सबेर उठद ही वैन आपणी नौनी बुलाये आर बोले : मेरी फूल जसी बेटी, तेरू ब्यौ, बोल, कर देण वै बांसुल्या दगड़े? छेणीन कुछ नी बोले। बुबा न बैजूक रैबार भेजे। बैजू आये। छेणी मोरी पर खड़ी होइक वै छनी देखदी रये बुबान बोले : देख बैजू, नौनी मैं त्वै दीं दंलो पर मैं सबूत चैंद कि तू वींका लैख छै भी कि ना। बैजून बोलें : छेणी का वास्ता मैं सब कुछ कन्न क त्यार छौं। बुबान बोले : त त्वे छनी एक साल का अन्दर सौ चांदू वेन्दू भैंसी लेक मैं देणी

चोटी पर कोई बाँसुरी बजाता है। मुझे लगता है, जैसे कोई मेरे प्राण हर रहा है।"

बाप ने आगे देखा, न पीछे और पहाड़ की चोटी पर चल दिया। वहाँ बैजू बाँसुरी बजाने में अपने को भूला था। उसने जाते ही बांसुरी छीन ली। बैजू हक्का-बक्का-सा रह गया। नन्दा के बाप ने कहा, "तू बांसूरी क्यों बजाता है ?" बैजू ने जवाब दिया, "बजाता हूं। तुम्हें बुरा क्यों लगता है ? जंगल में किसके बाप का राज है, जो मुझे मना करे !"

छेणी का बाप तब कुछ शान्त हुआ। उसने सारी बात कह सुनाई और फिर अन्त में कहा, "तुम बांसुरी न बजाया करो। जो चाहो, मुझसे माँग लो। मेरे पास इतने खेत हैं, भैंसें हैं।"...

बैजू मुस्कराया। छेणी के बाप को बुरा लगा। उसने कहा, "मांग ले, मैं झूठ नहीं कहता।" बैजू ने कहा, "जो मैं मांगूंगा वह तुम नहीं दे सकोगे।" नन्दा के पिता ने कसम खाई। बैजू को तब क्या चाहिए था ? उसने कहा, "तो मुझे नन्दा चाहिए।"

बाप स्तब्ध रह गया, "यह तूने क्या मांगा ? जरा सोचा तो होता। कहां राजा भोज और कहां बन्दर चोर !"

बैजू ने कहा, 'रहने दो। कोई बात नहीं। किसी को चोट खिलाकर भी क्या कहीं दान लिया जाता है ?"

उस रात छेणी के बाप को नींद नहीं आई। उसके मन में कई द्वन्द्व चलते रहे। सुबह को उठते ही उसने बेटी को बुलाया और कहा, "मेरी फूल-सी बेटी, तुझे क्या बांसुरी वाले से ब्याह दूं ?" बेटी ने कुछ न कहा। पिता ने बैजू को बुलावा भेजा। बैजू आया। छेणी झरोखे पर खड़ी उसे देखती रही। पिता ने कहा, "देखो बैजू लड़की मैं तुम्हें दे दूंगा, पर मुझे सबूत चाहिए कि तुम उसके योग्य हो कि नहीं ?"

होली। जु एक दिन को भी वेलम होयो त छेणी तेरो मुख नी देखणा की। बैजून कबूल करे।

कौल त करयाले वैन पर सौ चान्दू वैन्दू भैंसी लौणी सौंगी बात नी छै। इनी भैंसी जौंका कपाल पर सपेद टुबखो हो भौं कखी नी मिलदी। पर बैजू त बोल चुकी छौ। अब पिछाड़े हटणू ठीक नीछौ। वैन वबरी जोगी को भेष बणाये। हाथ पर बांसुली धरे आर भैंसों का खोज मा गौं-गौं फिर्न लैगे। जै गौं मां भी जान्दो बख वो बांसुली बजौन्दो आर गौं का लोक बिना बोलायां ही कट्ठा होई जान्दा। लोक वे समूण देन्दा, अपणा घर पर खाणा खलौन्दा, पर बैजू एकी चीज मांगद छौ: चान्दू भैंस, बस बेन्दू कथी गौं जाण पर मुश्किल से एक वनी भैंसी मिल जान्दी छै। बैजू वीं लीक अगाड़ी चल देंद छौ।

ई तरौं दिन बीत्या, मैना बीत्या आर आस्ते आस्ते अब सारो साल भी बीतण पर ऐगे। अजूं भैंसी पूरी नी होई छई। जना दिन नजीक औन्दा गैन, बैजू अधीरज होण लैगे। आखिरकार आखरी दिन भी आये। नौनी छेणी की गौं का बाटा पर आंखीं लगींई रैन। बैजू आबी औन्द तबी औन्द। वा हेरणी रैं कखी त धूलो उड़दो देखेलो। वींका कन्दूड़ लायां रैन : कखी त वैंकी बांसुली की भौंण सुणन मा औली। देखद देखद वींकों आंखी लाल होई गैन। व्याखन होये त धुंदला अंध्यारा मा भैंसों की टोली जनी औंदी देखेंदी पर वीं रात मौत जग्वालण का बाद भी बैजू नी बौड़्यो। छेणी कुमजुल्या होई गये। वींका आंख्यें मा आंसू टबलाण लै गैन। बुबान बुथ्याये : छोरी, वै भिखमंगाक तै रोणी छै। मैं भोल तेरा वास्ता भलो सी नौनी खोजीक लौंलो। छेणी हौर उगसी उगसीक रोण बैठे। वा स्ये नी सके। बैजू की अन्वार वीं की आंख्यों मां रीटरी रे। वैकी बांसुली की भौंण वींकी जिकुड़ी जनो कोरण लगे।

बैजू ने कहा, "छेणी के लिए मैं सबकुछ करने को तैयार हूं।" पिता ने कहा, "तो तुम्हें एक साल के अन्दर एक सौ चन्द्र-बिन्दुओं वाली भैंसें लाकर मुझे देनी होंगी। अगर एक दिन की भी देर हुई तो नन्दा कभी तुम्हारा मुख न देखेगी।" बैजू ने स्वीकार किया।

बैजू ने स्वीकार तो कर लिया, पर सौ चंद्र-बिन्दुओं वाली भैंसों को लाना सरल काम न था—ऐसी भैंसे, जिनके सिर पर सफेद टीका हो, हर जगह नहीं मिलतीं। पर बैजू 'हां' कह चुका था। अब पीछे हटना ठीक नहीं था। उसने जोगी का भेष धारण किया, हाथ में बांसुरी ली और भैंसों की खोज में गांव-गांव फिरने लगा। जिस गांव में भी वह जाता पहले बांसुरी बजाता और गांव के लोग इकट्ठे हो जाते। लोग उसे उपहार देते, अपने घर में भोजन करवाते, पर बैजू एक ही चीज मांगता था—चन्द्र-बिन्दु वाली भैंसें। कई गांव पार करने पर मुश्किल से एक वैसी भैंस मिल पाती। बैजू उसे लेकर आगे बढ़ जाता।

इस प्रकार दिन बीते, महीने बीते और धीरे-धीरे साल भी बीतने पर आ रहा था, पर अभी भैंसें पूरी न हो पाई थीं। ज्यों-ज्यों दिन पास आते जाते थे, बैजू अधीर हो उठता था। आखिर अन्तिम दिन आया। किशोरी छेणी गांव की बाट पर आंख लगाये रही। देखती रही, कहीं धूल उड़ती दिखाई दे। कान लगाये रही, कहीं बांसुरी की ध्वनि सुनाई दे, पर बैजू न लौटा। छेणी स्तब्ध रह गई। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। पिता ने उसे समझाया, "बेटी, क्यों रोती है। मैं कल तेरे लिए अच्छा-सा वर खोज लाऊंगा।" पर छेणी की आंखों में बैजू की आकृति घूमती रही। उसकी बांसुरी के स्वर उसके हृदय में गूंजते रहे।

सबेर भी नी होण दिने, छेणी न बुबा म जैक बोले : बाबा जी, मैं जौगीण होन्दौं। बैबान बोले : बौली होइगे क्या तू? छेणीन बोले : मैं ऊं तैं एक दां मिलण चांदऊ। तुम जाण नी देला त मैं मर जौंलू। वा बाबान समझाये, गौं वालौंन समझाये पर वींन एक नो मानी। वा ह्यूं—हिवालों मा चली गये।

छेणी बैजू का खातर बौली बणी गये। वीं अपण तन मन की सुद्द नी रैं। बस चल्दी जांदी छैं अर भट्यान्दी जान्दी छै। बाटा मा कखी अगास तैं लम्याण वाला डांडा-कांठा औन्द छा आर कखी पताल पड़ण वाला गैरा पाखा। कखी बरपन ढक्यां सौड़ मिल्द छा, कखी कुलैं आर द्योदार का जंगल। छेणी सबू तैं पार कर्दी गये। वींका खुटा कांडौंन छेडे गैन। ठंडन हात खुटा फटी गैन। फेर भो वा हिटदी रैं। देखेण की वा क्वांसी छें पर कु जाणी वींका शरील मा कथा शग्ति छै।

छेणी चल्दी चल्दी भौत दूर ऐ गये। चौतिर्प बरप ही बरप छौ। वख बैजू का मिलण की आसा भी नी छै। आखर वींन सोचे : मैं यखी म गलीक मर जौं। वा एक डांडां मा खड़ी होई गये : सैत् कखी बैजू देखे जाओ। पर चौतिर्प सुनकार छा। तब्री ह्यूं की बरखा शुरू होये आर आस्ते आस्ते वींका चौपासे ह्यूं थारेण लैगे। वा ढकी गये पर अबी वींपर प्राण छा। वींन सोचे : बैजू नी मिले त क्या होये? वैकी माया त मैं दगड़े छ। मैं वैको मूरत दगड़ी व्यो कर लिऊलो। वींन तबरी ह्यूं को एक मूरत बणाये, वा अपणा काख पर धरे अर अफुमा ही बोले : सची, मैंन त्वे धोका नी दिने।

तबरेक ह्यूं वींका गला गला तक ऐ गये। वींकी स्यूंद पाटी पर ह्यूं जमण लगी गये, पर आँखी वींकी अबी उफारी छै। ह्यूंन वींको गात जगण् छौ। इनु सो लगदू छौ जनी कि वा अंगारों मा बैठीं हो। तबरेक बात बत्वाणी का बीच क्वी

सुबह होने से पहले ही छेणी ने पिता के पास जाकर कहा, "बाबा, मैं जोगन बनूंगी।"

पिता बोले, "तू बावली हो गई है क्या ?"

छेणी ने कहा, "मैं उससे एक बार मिलना चाहती हूं। तुम मुझे जाने न दोगे तो मैं मर जाऊंगी।"

पिता ने समझाया, गांववालों ने समझाया, पर छेणी न मानी। वह बर्फ से ढ़के हिमालों में चली गई।

छेणी बैजू के लिए बावली बनी हुई थी। उसे अपने तन-मन की सुध न रह गई थी। बस, चलती जाती थी, चिल्लाती जाती थी। रास्ते में आकाश को छूने वाले शिखर आते और पाताल को जाने वाली घाटियां, कहीं बर्फ से ढके मैदान मिलते, कहीं चीड़ और देवदार के घने वन। नन्दा सबको पार करती जाती। उसके पैर कांटों से बिंध गये। शीत से हाथ और पैर फट गये। फिर भी वह चलती रही। वह देखने में सुकुमार थी, पर उसके प्राणों में जाने कितनी शक्ति थी !

चलती-चलती वह बहुत दूर चली गई। चारों ओर बर्फ-ही-बर्फ थी। आखिर उसने सोचा, "मैं यहीं गल जाऊंगी।' वह एक शिखर पर खड़ी हो गई। और विचार आया कि कहीं बैजू आता दिखाई न दे। चारों ओर सुनसान। तभी हिम की वर्षा शुरू हुई और धीरे-धीरे उसके चारों ओर हिम एकत्र होने लगा। वह ढकने लगी, पर अभी उसमें प्राण थे। उसने सोचा, 'बैजू न मिला तो क्या हुआ ? उसका प्रेम तो मेरे साथ है। मैं उसकी मूर्ति से ही विवाह करूंगी।' उसने हिम की एक मूर्ति बनाई, अपने बगल में रखी और उससे ब्याह कर लिया। उसकी आंखों में आँसू छलक उठे और उसने मन-ही-मन कहा, "बैजू देखो मैंने तुम्हें धोखा नहीं दिया।"

भट्यांद सुणेई : छैणी, हे छेणी ! छेणीन सूणै : कखी मेरा कंदूड़ रुणाणा त नी न ? यख मैंक कु भट्याई सकदो ? वीं छनी फेर वी धै सुणाई दिने। वांन सोचे : सैत् बैजू होलो। अबरी की दौं वा जोर से भट्याणें : ऐजा ऐजा, मैं यख छौं। उंथैं विटी भी आवाज आये : कख छैं तू, कख छै ? आर वन्नी बैंजू खलान्दू खलान्दू वीं मू ऐ गये। छेणीन बोले तुमन बड़ी देर करे। वैजून बोले : सिरप द्वि दिन को बेलम पड़े। छेणी मैंन नी जाणी कि तू इथा जल्दी घरन चली जाली। अब घर चल। मैंन तेरा बुबा सणी सबो भैंसा दियालीन।

छेणीन बैजू तें रसपसी आंख्योंन देखे आर बोंले : मेरो गात गलीगे। मैं अब मन्नी छौं। मैंन तुमारो मूरत दगड़ी व्यो कर याले मैंन सब कुछ पैले। सिरप जान्दी दां तुमारी बांसुली सुणण की ख्वैश छ।

बैजू इस्या नौना की तरौं रोण लैगे। छेणीन बोले : तुम मेरा सौं छन जु रोया। बैजू चुप होये। छेणीन फेर वे मू बांसुली बजौणक बोले। बैजून बांसुली गाड़े मुख पर धरे, रोण की सी भौंण निकले। बैजू का खुद जना पराण उडणा छा। वैका आंखू का अगाड़ी रात सी पड़ी गये। तबरेक छेणी बैजूक आखरी दौं भट्याणे आर बैजून देखे वैका अग्वाड़े छेणी नी छै, सिरप ह्य को थुपड़ो छौ।

छेणी का पराण इन्द्र की सभा मा चली गैन। वा वख नन्दा देवी वणो गये। आज भी जब लोक वै डांडा मथे जान्दन त वख फूल पाती चढ़ौन्दन आर ऊसणो उन्ने ही बैजू की बांसुली बजदी सुणेन्दी। ००

बर्फ उसके गले तक आ चुकी थी। पर आंखें अभी तक खुली थीं। बर्फ की ठंड से उसका शरीर कांप रहा था। तभी आंधी के बीच कोई चिल्लाता सुनाई दिया, "छेणी, ओ छेणी।" छेणी ने सुना। कहीं मेरे कान तो नहीं गूंज रहे हैं? यहां मुझे कौन पुकार सकता है?" पर उसे फिर वही स्वर सुनाई दिया। 'शायद बैजू है।' वह जोर से चिल्लाई, "आ जाओ, आ जाओ, मैं यहां हूं।" उधर से भी आवाज आई, "कहां हो, छेणी? कहां हो?" थोड़ी ही देर में बैजू हांपता हुआ उसके पास आ पहुचा। छेणी ने कहा, "तुमने बड़ी देर की।" बैजू ने जवाब दिया, "सिर्फ दो ही दिन की तो देरी हुई। मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि तुम इतनी जल्दी घर से चल पड़ोगी। चलो अब घर। मैंने तुम्हारे पिता की मांगी भैंसें दे दी हैं।"

छेणी ने बैजू को देखा और बोली, मेरा शरीर गल चुका है। मैं अब मर रही हूं। मैंने तुम्हारी मूर्ति से विवाह कर लिया है। मुझे सबकुछ मिल गया। बस, अब एक बार तुम्हारी बांसुरी सुनने की चाह है।"

बैजू बच्चे की तरह रोने लगा। छेंणी ने कहा, "तुम्हें मेरी कसम है, जो तुम रोओ।" बैजू चुप हो गया। उसने बांसुरी निकाली। मुंह पर रखी। पर उसमें से रोने का-सा स्वर निकला बैजू को लगा, जैसे उसके प्राण निकले जा रहे हों। उसकी आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया। तभी छेंणी ने बैजू का नाम लिया और बैजू ने देखा, उसके आगे छेणी न थी, बर्फ का एक ढेर था।

उसके प्राण इन्द्र की सभा में चले गये। वह नन्दा देवी बन गई। आज भी जब लोग उस चोटी पर जाते हैं जहां वह मरी थी, तो वहां फूल आदि चढ़ाते हैं। वहां उनको बैंज की बांसुरी बजती सनाई देती है। ००
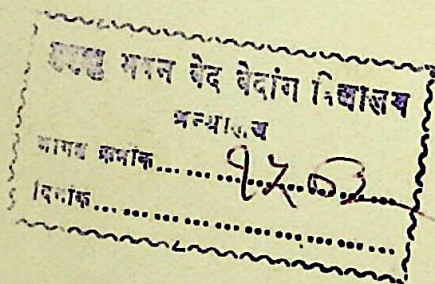
हमारी
लोक-कथाएं

- हमारी लोक-कथाएं
  विभिन्न जनपदों की कथाएं
- जैसी करनी वैसी भरनी
  बुन्देलखण्ड की लोक-कथाएं
- पुण्य की जड़ हरी
  व्रज की लोक-कथाएं
- कर भला होगा भला
  मैथिली की लोक-कथाएं
- सतवंती
  मालवा की लोक-कथाएं
- लखटकिया
  राजस्थान की लोक-कथाएं
- बहता पानी निर्मला
  राजस्थान की लोक-कथाएं
- आकाश दानी दे पानी
  गढ़वाल की लोक-कथाएं

□□